नये आदमी का जन्म

कविता संग्रह

नये आदमी का जन्म

नये आदमी का जन्म :
 : प्रथम संस्करण—1989 : आवरण : भारत भूषण भारती : मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज, कोट किशन चन्द, जालन्धर शहर : आवरण : सुधेड़ा बुक बाईंडर्ज, किला मोहल्ला, जालन्धर शहर : मूल्य : 45-00 रुपये।

Naye Aadami Ka Janma : a collection of poems by Vinod Shahi : First Edition : 1989 : Rs. 45-00

कुछ स्वांतः सुखाय

इस संग्रह की कविताओं का चुनाव करते समय यह सवाल मेरे जेहन में फिर उठा कि कविता क्या है ? सवाल पुराना है और इसका जवाब देते हुए अक्सर यही सवाल बार-बार उठाया जाता रहा है कि कविता क्या करती है ? जैसे कि अगर कविता की उपयोगिता को सिद्ध न किया गया, तो कविता लिखना ही बेकार हो जाएगा । इतनी तर्कशीलता मुझे कविता की प्रकृति के अनुकूल नहीं जान पड़ती । इतना ही ठीक लगता है कि उपयोगिता का सवाल काव्यानुभव की परिधि मे ही उठाया जाए। काव्यानुभव कविता के लिए पहली शर्त है। मेरे लिए काव्यानुभव का मतलब रहा है—सीमाओं से मुक्ति। सीमाएं आदतों की, दोहराव की, परंपरा की, दिखावे की, साधना की और यहां तक कि खास-खास किस्म के रसबोध की भी। ये सीमाएं ही रुकावटें है जो सत्य तक पहुंचने से हमें रोके रखती है। इनकी वजह से एक भय उपजता है जो हमे बंधी बंधाई लीक पर डाले रखने के लिए जोर डालता है। काव्यानुभव शब्दों के सहारे की गई वह यात्रा है जो एक ओर इन रुकावटों को तोड़-फोड़ डालने की खातिर जूझती है और दूसरी तरफ बंधी बंधाई लीक को फिर से अपनी तरह, अपनी दुनिया के रूप मे गढ़ने की कोशिश करती है। इस काम के लिए पीछे की सारी काव्य-दृष्टि और काव्य-रूप हमारे मददगार भी होते हैं और हमारे दुश्मन भी। यहां तक काव्यानुभव मुझे एक खास किस्म की काव्य उत्तेजना देता है और इसके बाद खुलेपन के अहसास के बीच एक प्रश्नाकुल इंतजार करने का धीरज भी। जब मैं स्थिर रह कर इंतजार कर पाता हूं, कविता खुद को मुझ से लिखवा लेती है। और जब मैं स्थिरता का पल्ला छोड़ इंतजार मे बने रहने का उपक्रम करता हूं, तो एक डरा देने वाली अराजकता मुझे और मेरी कविता को घेर लेती है। इन दोनों स्थितियों मे एक तनाव हमेशा मेरे साथ चलता है—कहीं दूर गहरे अतल विस्तार में छलांग लेकर कूद जाने का तनाव।

धीरे-धीरे सहज भाव से कथ्य को पकने देने की प्रक्रिया में मुझे विश्वास नहीं। ऐसे लगता है, जैसे यह प्रक्रिया अतीत की कोई वस्तु हो कर रह गई हो—महाकवियों के विराट अनुभवों की परंपरा से जुड़ती हुई। आज वह न साध्य है और न काम्य। आज जहां इतना कुछ है, इतना बिखराव, इतनी वैचारिकता ; वहा दुनिया के साथ आदमी का हार्दिक रिश्ता जोड़ने वाली काव्य-समाधि की जगह जाने अनजाने आयामों में कूद जाने का साहस ही उसे एकसूत्रता या आंतरिक ऐक्य का अहसास दे सकता है। अपनेपन को उस तक लौटा सकता है और उसके कर्मों को समूचेपन की संगति

में अर्थ दे सकता है। जब पता चलने लगता है कि हमारी छोटी से छोटी हरकत, छोटी से छोटी घटनाएं भी दरअसल व्यापक समाज, राजनीति, दर्शन, संस्कृति और यहां तक कि पूर्ण या ब्रह्माण्ड के अनुभव से जुड़ती / टूटती हुई ही हो रही हैं—तो अविश्वास और शंका की वजह से उस अनुभव में छलांग लेने को ही विसंगति या झटके के रूप में देख कर संभव है कि कोई उसे बर्दाश्त ही न कर पाए। परन्तु इस अनुभव को काव्यानुभव की सीमा मान लेना मुझे स्वीकार्य नहीं। सो काव्यानुभव की परिधि में उपयोगिता के सवाल को उठाने का मतलब है—पाठकों से कविता के रिश्ते को साफ तौर पर समझना। मेरी कविताएं शायद सीधे तौर पर कोई संदेश नहीं देतीं, पर वे बदलते हुए युग में संघर्ष के मुद्दों के बदल जाने की हकीकत को न सिर्फ पहचानना चाहती है, बल्कि इस बदली हुई हकीकत को स्वीकारते हुए बेचैन और लीकभ्रष्ट न हो जाने की सामर्थ्य जुटाने के लिए भी काम करना चाहती हैं। युग का बदलाव आदमी के बदल जाने की पृष्ठभूमि हुआ करता है। एक नये आदमी का जन्म—यही मेरी काव्य चिंता है। क्योंकि इसी पर आधारित है—युग के बदलाव को सार्थक दिशा में मोड़ देने की उम्मीद। जूझने के लिए बंधी बंधाई लीकों पर चल देने का मतलब है—जीवन के रहस्य से अपरिचित रह जाने के आदमी के दुर्भाग्य को स्वीकार कर लेना। और जीवन के रहस्य के रूबरू खड़े हो जाने का मतलब है—अबूझ में छलांग लेकर कूद जाने की हिम्मत और एक धीरज भरी इंतजार, झटकों को स्थिर रह कर पचा जाने की कीमिया।

विनोद शाही
ई. क्यू. 219, पक्का बाग
जालन्धर शहर-144 001

अनुक्रम

संघर्ष सूक्त

उस वक्त जब, हर आदमी अपना शासक खुद बनने से
हिचकिचाएगा नहीं
जब सत्य की खोज पर, कोई पहरा लगाने की जरूरत नही होगी:
यथार्थ से गले मिलने के लिए
जब कल्पना को पूर्वाग्रहों से निपटना नही पड़ेगा
हमारी लड़ाई उस दिन क्रांति हो जाएगी ।

समझौतों की जगह, जब विवेक झगड़े निपटाएगा
अपनी वाकफीयत आदमी जब धर्म से नहीं
अपने संघर्ष से पाएगा
जीवितों के युद्धस्थल मे, अतीत जब काम आएगा
हमारी क्रांति उस दिन जीवन हो जाएगी ।

हमारी ताकतें बेरोकटोक
जब कविता की तरह अभिव्यक्त होंगी
जरूरतमन्द वर्ग की शिनाख्त कर
जब लोग संघर्ष के मुद्दों को बदलते वक्त
किसी तनाव का शिकार नहीं होंगे
भाषा के बनावटी जाल मे
अर्थ जब चाह कर भी छिप नही पाएगा
हमारी जिंदगी उस दिन ईश्वर हो जाएगी । □

आत्ममिथक

मेरे मित्र !
मुझे घृणा के दृश्य में मत बदलो
प्रेम ही तो / रक्त है मेरा
बह गया
तो राख भी नही बचेगी / इस दृश्य मे ।

खाक दुश्मन हो तुम
कुछ मित्रो की आंखों मे भी
तिनके की तरह
सिकुडते हुए देखो मुझे
मौत भी मेरी सीमा नही है ।

सुन सको / तो मुझे दिमाग में धड़कते हुए सुनो
हंस सको / तो मुझे हिलती हुई पसलियों से रचो
रो सको / तो बस एक गर्म सास—
और मुझे पिघला दो ।

मुझे उठाओ
धड़कती धमनियो को शस्त्र बनाओ
खरे इस्पात को मुझ में खौलाओ
खाक मित्र हो तुम
कुछ दुश्मनों की आंखो मे भी
प्रेम के मोर्चे की तरह / खुदते हुए देखो मुझे
क्रांति भी मेरी सीमा नही है ।

प्रेम की आखों में
धरती की तरह / फैलते हुए देखो मुझे
आकाश भी मेरी सीमा नही है । □

यह कैसा
-झूठा-झूठा-सा अस्तित्व है मेरा ?
एक बेचारगी से भरा भलापन
खिसियाहटों को अपनी गरिमा बना सकने का उपक्रम
मर्यादित तौर तरीकों की / लौह भित्तियों के बीच
चोर झिरियों से खेलना / आंखमिचौनी
आत्मविश्वास से गलतबयानी कर पाने का अभ्यास
उपहास का पात्र बनाने की मित्रों की कोशिशों पर
क्रोधपूर्ण अभिनय
सुविधाएं पाने के लिए
मामूली फरेब कर सकने का तनाव
लीलती हुई रोजमर्रा की जिंदगी के बीच
रचनाशीलता के सहज से दैनिक तौर तरीकों को
खोज लेने की असामर्थ्य
इन सब से कभी फुर्सत मिली
तो सत्य तक भी पहुंच हो जायेगी मेरी।
तब यह आखिरी काम करना चाहूंगा
शिद्दत से जिसे करने से बचता आया हूं
तुम्हें ऊपर उठा सकने के काम में
खुद को खो देने का अहसास।
खोए बिना अपने आप को
तुम्हें कैसे ऊपर उठा सकता हूं ?
फिर भी अपने अदने से झूठे अस्तित्व को
सहेजे रखने की आदत से
पता नहीं क्यों, अभी तक जुड़ा हूं ?
अधूरेपन को जिंदगी मान कर
भला क्यों रुक गया हूं ? □

आत्मजेता

हवा तक न लगने दीजे
गर कोई सूरज हो पास अपने
जिस से शर्मिंदगी न होने पाए दोस्त को / अपने दिए पर।
साक्षी है दिया / उसके संघर्ष का
तिल-तिल जलने की योग्यता अर्जित करने का।

नम्रता के उस मुकाम को छू लीजे
कि निम्नतम के संघर्ष में शामिल होने को
झुकना भी ढिठाई लगे
और छोटी छोटी बातों पर का / दोस्तों का झूठा अहं
अलगाव की वजह न बन सके।

खुद ही खुद को / उस हद तक आज़ाद होने दीजे
कि अपनी सहज बुद्धि / कर्म बनने तक रुक न जाए
अभाव की बड़ी से बड़ी ताड़नाओं से घिरे दोस्त
खुद से भी पहले अपने लगें।
वे ही पांच होकर पंचायत लगें
गांव से लेकर राज्य तक आज़ाद लगें।

दोस्त और दुनिया के बीच
हर किस्म की खाई पर विजय
खुद की खुद पर विजय हो जाए। □

खोज

एक अपनी बंद आख तो खुलती नहीं
किस किस की बेहोशी को जीऊं ?

समझदार भी कैसी जिद का शिकार हैं
अब किस-किस के बचपने से व्यस्त होता फिरूं ?

अनगिनत आंखों से टपकता है मेरा लहू
किस-किस के रुदन से हंसी बटोरूं ?
जिंदा लोगों की तलाश में घूमूं ?
या जिस तिस के शव में संवेदनाएं रमाता फिरूं ?

मैंने अपने तरकश के जितने अग्निबाण
मित्रों के हाथ दिए
मेरे ही मांस में गड़ने के लिए लौट आए ।
अपनी ही ताकत को एक बीमारी की तरह
अपनी देह में कब तक रखूं ?

अब किस-किस के विश्वासघात से
घायल होता फिरूं ? □

अणु युग

यह देखो, आकाश फिर से हो रहा है पैदा
शून्य की कोख से / एटमी धूल की पोल की तरह ।

एक नीले रंग का बहुत बड़ा सांप
कुलबुला कर उलट जाता है पीठ के बल
ठीक हमारे सिरों के ऊपर ।

हमारी भूख और रोटियों के बीच रखे गए
छुरी कांटों, नक्काशीदार प्लेटों, सुराहीनुमा जगों
और कढ़ाईदार मेजों पर / करती है जगर मगर
आकाश के जन्म के वक्त पैदा हुई / जेर की झोल
निगलना चाहती है हमारी भूख को
समझ कर कोई भ्रूण ।

कोलतार से पुते नीली झाईं वाले राजपथ
जहरीली हवाओं को शह देकर
झोंक रहे हैं हमारे घरों की दिशाओं में

बंद होती हमारी सासों को / देते हैं नाम कुंभक का
नाभीमंडल को ऊपर चढाता हुआ एक प्राणायाम
भेद डालता है जीवन के एटम का नाभिक ।

एक गरीब मुल्क जीता है
आकाश के जन्मदाताओं की एटमी धूल की पोल की तरह
लड़ता है / खुद सारी सीढियां चढ जाने वाले
सांपो के खेलघरों के खिलाफ । □

उड़ाते हुए बम गुब्बारों की तरह

कुछ बच्चे / खेल रहे हैं / गुब्बारों से
आसमान को छू लेने के बाद
अचानक फूट जाता है / गुब्बारा
हाइड्रोजन बम की तरह ।

एक देश / भालू का लबादा ओढ़
खेलता है लुका छिपी
बच्चों में शामिल होकर ।
बच्चे नोच कर उसके बाल
सजा लेते हैं अपनी किताबों में ।
किताबों में लिखे
हाइड्रोजन बम बनाने के नुस्खे
बड़े मुश्किल लगते हैं उन्हें ।

सोचते है वे
क्या किसी हाइड्रोजन बम को
उड़ाया जा सकता है
गुब्बारो की तरह ?
और क्या किताबो मे बंद
भालू के बालों से

बनाई जा सकती है पेंटिंग
ऐसे देश की
जिसे लबादे ओढ़ने की जरूरत न होती हो ?

और जहां गुब्बारे उड़ सकते हों
गुब्बारों की तरह ? □

बांसुरी बजाओ कान्हा !

कहने को वे / तुम्हारी ही परम्परा के ध्वजवाहक थे कृष्ण !
लेकिन विरोधियों को दबाने के लिए
उन्होंने आतंक का सहारा बना लिया
यह भस्मासुर उन्हीं के पीछे पड़ गया ।

हमें तो जरूरत है तुम्हारी एक अदद बांसुरी की
उस बांसुरी की कृष्ण !
जो आतंक और हिंसा के शोर को एक दफा फिर
संगीत के सुरों में ढालने की कर सके पहल ।

आह ! वह बांसुरी हमारे पास क्यों नहीं है
वह ब्रज, वे ग्वाले, वे गोपियां
घास के मैदानों में निर्भय चरती वे गौएं
प्रेम की आंधी को झुलाने के लिए / बेताब और खामोश
वे कुंज, वे बाग बागीचे ।

आज भी उसी तरह खड़े है प्रतीक्षा में रत
तेरी बांसुरी की धुन शुरू होने की उम्मीद में स्तब्ध ।
हमारे रोम-रोम को होंठ बना कर
फूंक दो उनमे अपनी गर्म सांसें
बजाओ कान्हा ! वह बांसुरी तो अवश्य बजाओ
अपने रास की उसी क्रांति को
आज झोंपड़ियों, बस्तियों और गली कूचों में ले आओ । □

स्वगर्भत्व

प्रेम का एक ही मतलब है
कविता रचना।
रचना का एक ही मतलब है
अन्त में आरम्भ की रचना
और आरम्भ का कहीं अंत तक जाकर
आरम्भ होना।

फिर यह सब जो रचा जाएगा
कविता बनेगा
वह मैं होऊंगा। □

उस पेड़ का नाम बताओ!

पपड़ाए हुए अपने गोश्त को चाटता हुआ युधिष्ठिर
बोलता है सच
राजपथ के किनारे-किनारे उग आते हैं जो पेड़
गवाह उस सच के / तक़रीबन सब को लगता है
आदमखोरों से कुछ मिलते जुलते जुलते हैं वे पेड़।
कौन किस्मत वाला सही-सही नाम बताएगा / उस पेड़ का
यह जानने के लिए
अपनी कमीज़ों की धारियां गिनकर
निकालते हैं लोग प्रतिभा के क्रमांक / राजपथ के किनारे-किनारे।

अपने उपनामों का सही इस्तेमाल करने के लिए
लेखक लोग करते हैं दावे
झुठलाते हैं आलोचक / अपने छद्मनामों में

सांझ होते होते

आकाश के होंठों पर अपने लिपस्टिकों से लिख देती हैं
फैशनेबल औरतें / उस पेड़ का नाम
बजाते हैं तालियां / बड़े बड़े अफसर / कौमी सभाओं में।

सच / युधिष्ठिर के साथ-साथ
उतर कर राजपथ से / चल देता है पगडंडी पर
गोबर लिपी राह के किनारे-किनारे
उग आते हैं कुछ पेड़
गवाह इस गिरावट के / तकरीबन सब को लगता है
कल्पवृक्षों से कुछ मिलते जुलते हैं वे पेड़।

तमाम मुल्क सोया रहता है
कोई नहीं बताता / उस पेड़ का नाम क्या है
हालांकि सब जानते होते हैं उस पेड़ का नाम। □

आदमी का जन्म

रक्त पीने की परम्परा होगी कोई खरब वर्ष पुरानी
मस्तिष्क बना होगा पहली दफा जिस दिन इस धरती पर।

पहली दफा उस दिन किसी सिर ने
रक्त चूसा होगा अपनी जुंओं का
हत्यारों की ताकत को जिंदगी ने
पहली पहली दफा आजमाया होगा
हुआ होगा पहली-पहली बार धरती पर जो समुद्र मंथन
किसी देवता ने छीन कर दानवों से
पहली दफा पीया होगा अमृत और हालाहल एक साथ।

जन्म लिया होगा पहली बार धरती पर किसी आदमी ने।

जन्म लेकर पहली दफा किसी आदमी ने
रक्त पीने की आदत को बदल दिया होगा
रक्त पीने की परंपरा में पहली दफा।

परंपरा की पीठ पर सवार
पहली दफा पहचाना गया होगा आदमीयत को
और हमेशा नया होने की उम्मीद को
दिया गया होगा नाम आत्मा का पहली दफा। □

नये आदमी का जन्म

मेरा भाई मुझे प्यार करने से पहले पूछता है
तय कर लिया है कि नहीं तुमने / अपने भविष्य का मकसद !
मां-बाप ममता दिखाने से पहले
तय करते हैं / किस झंडे को कौन-सा नारा देगा यह लड़का ?
पत्नी मेरे चेहरे को घूर-घूर कर देखती है
अभी तक अपनी संतानों के विकास तक को
परिभाषित क्यों नहीं कर पाया हूं / पंचवर्षीय योजनाओं के रूप में ?

ऐसे वक्त लगता है मुझे
अपने आप को एक नयी शक्ल दे डालना लाजिमी हो गया है / मेरे लिए
प्रवेश कर जाना चुपके से / संस्कारों की मांस थैली में
हड्डियों के काले रक्त के तालाब में / रुंधी हुई सांसें लिए।
अब की दफा पूछता हूं मैं
मुझे कौन जानेगा ?
झेल कर प्रसव पीड़ा
मुझे नया जन्म कौन देगा ?
नया जन्म
जो रिश्तों के मायने बदल देगा
एक दूसरे से जुड़ी लहू की अदृश्य धमनियां
गर्भ नाल की तरह
प्रेम को ले जाएंगी
नाभि से मेरी / सब के दिलों तक।

मकसद जिंदगी का / जिंदगी से मिलेगा
लगातार जूझने के दरम्यान ।
फिर पकड़ कर अपनी रीढ़ को / डंडे की तरह
पूरे मस्तिष्क को ले चलूंगा / अपना झंडा बनाकर
जो कुछ भी बोलूंगा / नारा बन जाएगा
खुद झेल कर अपनी-अपनी प्रसव पीड़ा
हर आदमी नया हो जाएगा
कुछ भी नहीं होगा नियोजित
नये आदमी की संतानों की खातिर
बेहिसाब आजादी के साथ
उठा ले चलेंगी वे अपने युग के परचम
कुछ और करना / मुमकिन ही नहीं होगा
उनके लिए तब । □

परशुराम

कोशिश करता है अकेला परशुराम
बूढ़े सूरज के सफेद रेशों को
अपने फरसे से काटने की।
हजार साल पुराना सूरज
कहता है परशुराम से / कर नमस्कार
कहता है परशुराम / पहले घर में प्रवेश कर / कीटाणु मार ।
गुस्से से तमतमाते सूरज की भयानक बारिश में
फूटती हैं नकसीरें / फिर भी हंसते हैं
खुले में काम करते हजारों परशुराम तरस राम
रंग कर अपनी खिच्चड़ दाढ़ियों को अपने रक्त से
लगने लगते हैं जवान
बूढ़े सूरज के मुकाबले में परशुराम ।
बदल-बदल कर आकाश के नीले नकाब को

छिपाना चाहता है ऊंची जगह पर सवार सूरज
अपनी दाढ़ी के सफेद बाल।
जानता है परशुराम / इस सूरज से कहीं भयानक है
उसके अपने कालीदास की हिमस्नात चांदनी रात
या जयदेव का कूजित कुंज कुटीर
गुफाओं में होते गए हैं तब्दील ये
घर बूढ़े सूरज के गुप्त षड्यंत्रों के
ऐसे आड़े वक्तों में रोके रहता है सूरज
अपने एकाधिकार में आई गुनगुनी धूप को।
पीला पड़ जाता है रंग
रेलिंग के सहारे खड़े बेकार नौजवानों का
नजरें हो जाती हैं सफेद।
सब उन के ही बीच से होकर / बाहर निकल आता है परशुराम
अकेला है वह / फिर भी पता नहीं क्या सोच समझकर
करता है कोशिश इत्मीनान से
बूढ़े सूरज के सफेद रेशों को / अपने फरसे से काटने की। ☐

एक बालक का जन्म

समझ के परले सिरे से

कुछ अर्थहीन से आकारों के बीच
एक बालक का जन्म लेना

एक इशारा था गोया
समझ की हद के पार अर्थ के फैलाव का
मुक्त था जो / उपयोग के बंधन से
अर्थ, समझ, उपयोग / सब की कसौटी था पहली पहल।

बाहर आकर / सबसे पहले
सुबूत दिया अपने ज़िंदा होने का / रोकर बालक ने

हमने घड़ियाँ देखीं
उस क्षण को पवित्र माना
बालक ने चुप हो कर हैरानी से इधर-उधर निहारा ।

एक तरल निगाह
कमरे की मुर्दा दीवारों
और सामान की उपयोगी तरतीबों को
पृष्ठभूमि में उपेक्षित की तरह छोड़ती हुई
करने लगी तरोताज़ा
थकी हुई माँ को
ठहरे हुए माहौल / और बेचैन प्रतीक्षा में बैठे लोगों को ।

माँ की आंखों के इर्द गिर्द
खिंच आए स्याह दायरों में
हिलजुल-सी होने लगी / संतुष्ट उत्साह की
बंद कर आंख / पूर्णता के भाव को
देखा उसने / बालक के बिंब को
रोंएदार नर्म त्वचा में लिखे जीवन को ।

सो गया बालक फिर
जीवन के विराट अनुभव को बिखरा कर
अर्थ की पहचान के सफर को
समझ के परले सिरे से शुरू करने में
हो गया वह हमारा बेबूझ हमसफर ।

इस्पाती निगाह

चुल्लू भर आचमन कर द्वन्द्वों का
साध कर दम
धधकाने लगा मैं / एक नामालूम आग
कोमल प्रतिभा के मुकाबले
खड़ा करने लगा / ताकत मांसपेशियों की

सदियों से जो हमेशा जीतती ही आई होश से
कुचल कर सत्य को जिसने
इतने झूठ प्रचारित कर दिए / सच्चाई के नाम पर
कि उनके बीच तय करना हो गया कठिन
प्रामाणिक शक्लों और नामों को।

कौन जाने जिससे विरोध है मुझे
वह भी सिर्फ एक ट्रिक हो कैमरे की
लेकिन ध्वस्त करने को उसका आभाचक्र
काफी नहीं शोधन केवल सत्य का
ताकत मांसपेशियों की फिर भी तो चाहिए
बिना उस के टिकेगा कहा सत्य—
इस्पात होकर भी कोमल जो आंख-सा
दिशाओं तक फैली एक ठोस निगाह-सा।
एक बालक जिसने अभी-अभी खोली है आंख
उसका जिंदा होना सुबूत है
ठोस सत्य की कोमलता का।

एक दिन जवान होगा यह बालक
तब मेरे द्वारा जोड़े गए
नयेपन और सत्य के रिश्ते को
मासल आयाम देगा
जीत लाएगा जमीन
इस्पात को तरल निगाहों मे बदल देने की खातिर।

पाश पूर्वानुमान के

कितना सुंदर है बालक ?
सिकोड़ कर भवों को
देखता है खिड़की के पार
ठीक हमारे पूर्वानुमान की शक्ल मे -
खोल कर होंठों को मुस्कराता है

हाथ में पकड़ कर उंगली को मेरी
दबा लेता है / कुनमुनाती उंगलियों के पाश में;
किसी अनाम अदिखे हमारे ही पूर्वाभास में।

मरसरा कर ऊपर को उठते प्राण
सख्ती से कहते हैं मन को / ठहर !
देख ! जीवंत हो उठी
अपनी कभी की दबी छिपी इच्छा को प्रकट
झुका दे माथा
भविष्य को पहले से जान लेने वाली / अपनी आंख के समक्ष।

नहीं, इस बालक में कैसे हो सकती है
मेरी पूर्व की इच्छा साकार ?
मेरी रचना है मुझसे आजाद / आज़ाद है
तभी तो जिंदा है ।

अपने पूर्वानुमान को बालक समझूं
और इस गलतफहमी में जब भी कहूं इच्छा कुछ ऐसी
न देखे बालक इस या उस प्रकार
या खिड़की दरवाजों से ही रहित हो
मेरी इच्छा का घरबार
न बांधे मुझको या इसकी मां को
यह बालक / हो कर लाचार
और या फिर अपनी तटस्थता में
दंग हुए रहें होंठ बालक के इस बार

तब-तब खोल कर मुट्ठी अपनी खाली
दिखा दे यह बालक
किस कदर ये इच्छाएं हैं अयथार्थ ?
दूसरों को बजाए / बांधती हैं खुद को ही बंधा कर
ऐसे में क्या कर लेंगे हम ?
अपनी इच्छा के हाथों खेल कर
क्या जीवंतता से खाएंगे खार ?
सचमुच सिमट जाएंगे
अपनी कब्र में भी जी / हुए बार-?

जो जी उठा हो
उसके साथ हमकदम हो चलना पड़ा
तो खाक इच्छा को साकार किया ?

लेकिन इसी इच्छा को करता हुआ जीवंत
किलकार उठा खुशी से बालक
हमारी समझ के खिलाफ
हमारा करता हुआ अनवरत फैलाव । □

असहयोग से असहयोग

एक भार-सा गूंजता है मन में
मन ! मैं तुझ से असहयोग करता हूं
अपने मुर्दापन को झाड़ने के लिए।
जिंदा रहने दिखने की कोशिश में
वर्ना मैं भी कहां पीछे रहता हूं.
अपने विज्ञापनों को अपने हाथों में उठाए फिरने से
मित्रों और आसपास की दुनियां को
चकाचौंध किए रहने से
असफलताओं के अहसास को
परंपरा के बोध का नाम देकर / फक् से सहते जाने से
थकान को संन्यास का पूर्वाभ्यास मानने से
पत्नी के हाथों परोसे गए सादा खाने को
जीवन का आखिरी निष्कर्ष मानने से
टूटती हुई सांसों को प्राणायाम का नाम देने से
और लीलती हुई निराशा को वैराग्य कह कर
यूं ही सार्थकता महसूस करने से।

मुझे हताश कर के भी तू कहां हताश होता है
इसीलिए मन !

मैं तुझ से ही नहीं
तुझ से असहयोग करने की अपनी कोशिश से भी
बाहर आना चाहता हूं
जिंदगी को ओढ़ कर जीने की वजह से
कभी मुर्दा तो कभी जिंदा हो जाने के
दुष्चक्र को हमेशा के लिए तोड़ना चाहता हूं
मगर इस से और भी घिरता चला जाता हूं।
यह कोई उपाय तो नहीं
फिर भी मन!
मैं तेरे असहयोग से असहयोग करता हूं। ☐

पूरा होने की ललक

पता नहीं कैसे
चेहरे के न जाने किस कोने में हंसी
किसी तरखान की आंखों में
बची दिखाई देती है
किसी हरे भरे पेड़ से कोई सार्थक बात करने की हसरत।

और किसी नाई के जीवन में
जगती है उम्मीद ऐसे समय की
कि गर्दिश जिसकी
झाड़ न पाती हो / पेड़ों और लोगों के सिर के बाल।

पता नहीं कब कहां से आ जाता है
वह गुमनाम-सा लम्हा
जब अभावों की तमाम सरदर्दियों के बीच
अचानक दिखाई देने लगते हैं
एक ठेलेवाले को / पहियों की रेलपेल की वजह से
धड़क-धड़क उठते नजदीक के पेड़।

गोया पूछते हों एक ही सवाल
वह कौन-सा बोझ है / जिसे ढोकर
हल्की भी हो सकती है दुनिया ?

ऐसे नाजुक मौकों पर / पता नहीं कैसे
बची रह जाती है / इनकी आंखों में चमक पहचान की
यह वह आखिरी प्रकाश होता है
जो छू सकता है / हमारी स्याह आत्माओं को ।

जूझती टकराती जमाने की होड़ के बीच
एक बेहद पहचाना हुआ-सा आदमी
सिर्फ गुना तकसीम ही नहीं करता / अपने हाथों पर
सिर्फ छूकर ही पूरा होने की ललक भी रखता है । □

सौंदर्य की आंधी और भविष्य

आज मेरे हर रोंगटे में खिला है एक फूल ।
इस धरती के सारे फूल
मेरी त्वचा पर हैं ।

चारों दिशाओं से / काले भूरे गोरे लोग
तितलियों के पंख लिए
चले आते हैं मेरी तरफ ।
एक हल्की-सी बदली बन
मेरी त्वचा के बालों पे
घिर रही हैं मेरी धड़कनें
दुनिया भर की घास से तिप तिप कर
यह मैं चू पड़ा हूं
गोया सौंदर्य की आंधी बन
विश्व भर में फैल गया हूं ।

कौन जानता है कि अगले ही पल

कच्चे चुंबनों की गंध से बने चेहरे
छिप नहीं जाएंगे किसी काले चेहरे के पीछे ?
ठोंस-ठोंस कर अपनत्व की गर्मी को
देह जो बनी हैं गुदाज
मांसल तनों सी काट-काट कर
डाल नहीं दी जाएगी
कल तक सूखने की खातिर ?
ये खिले हुए फूल
उछल कर आंखों की कोटर से
नहीं होंगे लहूलुहान ?
और उधड़ कर मेरी यह खाल
टूटे तितलियों के पंख सी
लावारिस हवा में नहीं उड़ेगी कल तक ?

चलो ! कल के बच्चों को कुछ तो कौतुक होगा
कुछ तो सुधरेगी
टेढ़े भविष्य की करुणाहीन वैज्ञानिकता।
मुरझाने तलक खिलने का
फूलों को
कुछ तो अवसर मिलेगा। □

पांचवें मोड़ पर

यक्ष भाई ! चुकता हुए मेरे चार ऋण
इस आखिरी ऋण को भी / बिना चुकाए नहीं जाऊंगा
बदलाव के संकट के बीच / खतरों से मुंह नहीं मोड़ूंगा।
बीसवीं सदी के सूर्यास्त के अनुभव
खुद रहे हैं मेरी त्वचा पर / एक नया रोमकूप बन कर
लेकिन इस कूप में ज्यों ही डुबकी लगाता हूं
सहना पड़ता है मुझे / मित्र के हाथ का ही भरपूर वार।

पर विश्वासघात नहीं करूंगा
ऋण को मित्रता की मर्यादा में बदल कर रहूंगा।
अपने इस कूप का पानी पीने को
चार बार तो पहले ही मर चुका हूं मैं
मेरे यक्ष मित्र! / युधिष्ठिर तो कब को हो चुका हूं मैं।

मेरे तलवे के एक फटे रोमकूप में / लाश है मोर पंख की।
दिमाग में दिए-सा जलता रोमकूप / अप्पदीप होने की कोशिश में
बुझता जाता है / ब्राह्मणवाद की आंधी में।
तीसरे कण्ठ पर का कबीर पंथी रोमकूप
मर कर / हिन्दुओं मुसलमानों में बराबर बंट गया है
और बारूद के धुएं से मेरी छाती में घुटा
चिल्लाता है लंगोटधारी रोमकूप / हे राम!

मेरे देश के भविष्य को अपने कुएं में बंद करने वाले
तुम ठीक-ठीक कौन हो / यक्ष भाई!
यही जानने की कोशिश करते-करते
मर गए हैं मेरे चार रोमकूप
और पांचवें में मेरे मित्र घात लगाए हैं
मित्रता के इस ऋण को / बिना मरे नहीं चुकाऊंगा;
और चुकाए बिना भी नहीं मरूंगा। □

संप्रेषण और संवाद

श्याम सिंह किसकी सुने ?
जब यह बात साफ-साफ तय होगी
बारूद का धुंआ / उसी पल बैठ जाएगा।

राम लाल किस से बात करे ?
जब यह बात दोस्ती दुश्मनी से / तय नहीं होगी
विरोध का जाल / उसी पल छंट जाएगा।

काटता है / तो लोगों पर शक्तिपात हो जाता है
प्रश्न पूछो / तो उसकी दुम गोल मकोल चकोल मुड़ जाती है
दुम के दुभाषिये गोल को शून्य / मकोल को मूर्धा
और चकोल को चतुर्मुखी कहते हैं।
अज्ञान की ताकत को हल्कू ने नये अर्थ दिए हैं
श्रम विश्राम में बदल गया है / और साहिबी निरे दिखावे में।

बस एक ही चीज सार्थक रह गई है
जिसे आजकल
हल्कूपन के नाम से जाना जा रहा है। □

खेल खेल में

क्या हूं मैं ?
शायद अपने आगे
या शायद अपने पीछे खड़ा हूं मैं।

जब धूप में चमकते दिखाई दें
हवा में तैरते धूल कण
विसर्जित कर अपना अतीत / घर के लॉन में
देह समेत गिरूं / छोड़ कर अपना सब भार
मुक्त हो जाऊं / हल्के होने की उम्मीद तक से।

अंकुराएं (घास) बीज : अंकुराएं
रोएं पड़ोस के बच्चे : रोएं
उत्तेजना माहौल में कमेंटरी की घिरे : तो घिरे।
घर के पौधे पर लॉन फूल-सा लगे
देह मेरी लगे चार पत्तों का झुरमुट / झूली रहे।
लगा रहूं अपने काम काज में
पढ़ूं / बच्चों को डांटूं / ऑफिस चला जाऊं

मगर भूली रहे / पीछे लॉन में / पत्तों के झुरमुट सी ;
कंपती रहे / मेरी अतीत देह ।

कभी अपने पीछे खड़ा रहूं
कभी अपने आगे डटा रहूं
मगर खुद में रहने की तकलीफ से बचा रहूं ।

दो

खुद में भी कहां हूं ?
दृश्य हो चुका हूं / या अभी दृश्य होने को हूं मैं ?

दूर देखूं / सूर्य से परे फैला आकाश / धूसर स्याह
भीतर देखूं / पानी में सांस लेता / पत्थर में जड़ होता जीवन
टूट फूट कर देखूं / आग और गति के चक्र
दुस्सह भयावह आकार
फैल-फैल कर देखूं / प्रेम से लेकर युद्ध तक के आघात ।
इसी को सत्य का नाम दे दूं
या कुछ और खोजूं
खोज के व्यर्थ हो जाने तक / बस खोजूं !

जो हो चुका—स्वभाव
उसकी नयी संभावनाओं को आए हुए देखना—कविता
होने और देखने के बीच
हाथ-पांव मारते रहना—जीवन ।
किसी के लिए मर जाने की उम्मीद
और फिर उसकी यादें—खोसिल ।
और-और असंतोष—यही सब हासिल ।
क्या क्या होने को है—शंका ।
मृत्यु को तड़प ही है—तो जीवन का क्या ?
और जीवन के दृश्य बनने का भी क्या ?

तीन

मर तो सकता हूं
पर उस अनुभव को लेकर कैसे जीऊं ?

घर कर पत्थर बनूं
तो खुद को तराश सकूं
अंकुराऊं तो अपने फनों में
बुढ़ाने टूटने का अनुभव भरूं
मिट्टी से केंचुआ बन निकलूं
तो फर्श पर पीछे / पानी के जीवित शब्द लिखूं
चिड़िया बनूं तो अपने घोंसले को
कविता-सा तो रचूं
बैल बनूं / तो गले में बंधी घंटियों से
गति को संगीत से समझूं ।

और आदमी ही बनूं
तो बस इसी अनुभव में जीऊं
कहने लायक हो तो ही कहूं
न कहना हो / तो मुस्कराऊं
और पूरा गुजर जाऊं
इस तरह कि फिर
बिल्कुल शेष न रह जाऊं । □

शंकित बिंब की खोज

झूठ नहीं डरता है
मुझ में है डर ।
सुरक्षा की चाह जहर हो गयी
और मैं साप होकर शंकित-सा
धरती के अंधेरे विवर में घुस गया ।

सच नहीं डरता है ।
भयाकुल मैं / खुद को बचाने के लिए
शब्द ईजाद करने लगा ।

जीभ को धनुष बना कर
स्वर तंत्रियों की डोर की तरह खींचा मैंने
हृदय के बल से
तुम पर कविताओं को फेंकते हुए
स्वयं को निर्विकार
न मारने योग्य
पूज्य बना लिया।

निर्भय होने की खातिर मैंने
असत्य की खोज की
और सत्य की भी।

मैंने पेड़ को सत्य माना
और वह अपने आस पास के आकाश में
अ-सत्य था / नहीं था।
यही घटना आकाश को सत्य मानने पर भी घटी।
दोनों की सत्ता बराबर थी।

अपने ही होने का अहंकार
वह दोनों में नहीं था—
यही निर्भय था।

वाणी पर अंकुश
और वाणी की चीख
दोनों में एक विष था—
एक डर से उपजी कविता।
मगर निर्भय का यही कहना था
कि तब भी धरती
अपनी धुरी पर निश्शंक घूमती रही थी
और आकाश अडिग रह कर
सम्भाले हुए था सभी ग्रहों को
और सूर्यों को। □

दुःख और करुणा

मुझ से मेरा आराम मत छीनो
उस ने चिल्ला कर कहा
मैंने उसके दुःख वापिस ले लिये ।

दुःख ही तो मेरा आराम हैं
वह फिर चिल्लाया
मैंने उसके दुःख लौटा दिये ।

मुझे मेरे ही दुःख मत दो
इस दफा वह चिल्लाया ही नही / रोया भी
मैंने अपने दुःख उसे दे दिये ।

किसी और के दुःख तो बहुत ज्यादा हैं
वह सचमुच जारोज़ार रोने लगा ।

इस पर मैंने उसे सब कुछ
पहले जैसा कर देने की धमकी दी
फिर उसकी तरफ देखा
लगा जैसे वह कभी रोया ही नही था । □

मूक बहुमत से मुखातिब

तुम अपने लिये क्या मांगते हो
आजादी या टिकाव या बराबरी या अखंडता ?

तुम्हारे आजादी की सोच में आते ही
प्रतीकों के जंगल उगते हैं
और उग आती हैं संस्थाओ मे
डिक्टेटर अमर बेलें ।

तुम्हारे टिकाव की सीध में आते ही
जंगली फलों से टपकता रस
अमृत कहलाने लगता है
और धार्मिक जुनून
साउंड स्पीकरों के ज़रिये
जुड़ जाता है
सीधे तुम्हारे ड्राइंगरूमों के साथ

तुम्हारे बराबरी की सीध में आते ही
एक पेड़ ऊपर उठ कर
सारे जंगल को ढक लेता है
बदले में जंगल उसकी दाढ़ी श्रृंगार करता है
सुबह उठ कर देखते हैं जंगली जानवर
कि जंगल खेत हो गया है।
अचानक जंगल के सब से ऊंचे पेड़ को
ईंधन की तरह जलाती
लोगों की बस्तियां
जानवरों की जगह
लोगों का शिकार करने में दिलचस्पी लेने लगती हैं।

और तुम्हारे अखंडता की सीध मे आते ही
यह घोषणा होती है
कि ढकोसला हैं तुम्हारी सारी मांगें
कि जब
हाथ पांव आंख नाक पेट गरदन
एक सीध में आ जाएं
खुद खुल जाते हैं सभी दरवाजे
कि यहां इस व्यवस्था में
भीख की सीध में आए बिना
क्या मांगते हो ?
मिलता कुछ नहीं
भीतर और बाहर का तालमेल टूट जाता है / बस ।

इसलिए बुद्धिहीन आतंकवाद को भुगतने के सिवाय
और चारा ही क्या है तुम्हारे सामने ?
यवत रहते
कंधों पर ढोना ही ढोना है तुम्हें
परंपरा का शाप ।
इन शापों के भूत फल
लाल नीली काली सफेद हरी गुलाबी या किसी और रंग की
पवित्र बेवकूफी के रूप में आएंगे
संस्कृति और सत्ता में
अपनी-अपनी आज़ादी के बीज बो कर
तुम्हें तनों में चिनेंगे
फल खुद खाएंगे ।
जंतर मंतर में टिकाव की मणि खोजेंगे
तुम्हें सांप की योनि देंगे ।
रीढ़ में विष भर देंगे तुम्हारे ।
वे तुम्हारे बराबर होंगे
वे ही तुम से छोटे भी होंगे
और वे ही तुम से बड़े ।
जब तुम्हारे अलावा वे सब कुछ होंगे
तुम उन से कैसे जूझोगे ? □

नीलामी

जेबकतरों के हाथों की तरह छिपी हुई
शहर के सीमांतों की आत्माएं
फुटपाथ पर के रैंग्ज के ढ़ेर में हाथ मारने पर
विदेशी लेबलों के रूप में
यहां वहां चिपकी हुई मिलती हैं
लगे हाथ खरीद लो इन्हें
बड़ी सस्ती हैं !

खरीद लो इन्हें / काम आएंगी
भाषण देते वक्त
जब चाहोगे / ये हुजूम से तालियां पिटवाएंगी
क्रांति का उद्घोष दोगे
तो अपने सिर को आपके पैरों पर रख / कसम खाएंगी

और मान लो करवाने हों दंगे फसाद ही
निर्भय होकर सड़कों पर निकल आएंगी
परवाह नहीं करेंगी
और जब तक पूरा शहर मीमांत की बराबरी तक
टूट फूट जाने की नही देने लगेगा गवाही
पीछे नही हटेंगी ।

आपके दिए रैग्ज पहनने वाली आत्माएं
जब चाहोगे प्रायश्चित कर लेंगी
और जब तक चाहोगे छिपी रहेंगी
जेबकतरे के हाथों की तरह
फुटपाथ पर बे रैग्ज के ढेर से / कुछ वक्त के लिए
 विदेश चली जाएंगी / महंगी होकर लौटेंगी
 वक्त रहते खरीद लो इन्हें / बड़ी सस्ती हैं अभी । □

मुक्ति पल

मैदान भर
घास पर
पल भर
 बैठी चिड़िया
 उड़ गई
ऊपर
 आकाश के
 बुलावे पर ।

उस पल घास / मैदान भर
सिमट कर / एक बिंदु में
थोड़ी सी उठी / ऊपर
मैदान ने खींच लिया / पर
बिखर गई
सारी घास
फिर से
मैदान में। □

एक क्लर्क की प्रार्थना

मुझे समझना हो तो मेरे जैसा बन कर आ
या मुझे ही अपना अवतार बना
मेरे कृष्ण मुरारि !
और अगर हो सके तो एक रुपया रिक्शा पर खर्च कर
साथ ले कर अपने बीवी और बच्चों को
मेरे घर चाय पीने के लिए आ।

चल, किसी दिन / धक्कम धक्का बसों में
साथ ले चलूं तुझे नौकरी के लिए
और कंस मामा न करें
अगर कहीं रास्ते में हो जाए / बस की ब्रेकें खराब
और धड़कते दिल से हम दोनों ही
दफ्तर में पहुंचें जरा लेट
हो सके तो शकुनि मामा-सा पासा एक फेंकना
या मुझे भी / चुपके से अपने हाथ में एक तिनका लेकर
सुझा देना बहाना एक ऐसा
कि अफसर भूल कर सारी डांट डपट अपनी
हमें गले से लगाए / होकर भावुक कहे
मुझे आपकी तकलीफों का अंदाजा है।

कि मेरे धन का वर्धन करना
सुझा देना नंबर लाटरी का
या दबदबा गालिब करना / मठाधीशों पर इंद्र से
या लीडर बनवा करवाना चर्दों में घपला
और या तबादला मनचाही जगह पर ।

बस एक काम कर देना
सही रूप में करवा देना शिनाख्त
दुर्योधनी व्यवस्था की
और उन लोगों के बीच से चलना
उसका विरोध करने के लिए खड़े हों जहां भी
दो चार सुदामा या एकलव्य
इस दफा मत बनवा देना / इनके लिए कोई महल
या गुरु की प्रवंचना पर खड़ा धोखे का कोई लाक्षागृह
हो सके तो इन्हें महज / थोड़ी-सी सुविधाएं
और जीने की समझ देना
साथ में जूझने की ताकत
न कि नपुंसक स्वीकृति अपनी कृपालुता की ।

देख, इस दफा अपनी भगवत् प्रकृति से भी नहीं डरना
और हमें सीधे ही ले आना
एक नयी क्रांति और जरूरी जरूरी सुविधाओं तक
लेकिन इस तरह के सारथी न बन जाना
कि तुम्हारे बिना हम जूझ ही न सकें ।

बस हम जैसे हो जाना / विराट रूप वाले गोपाल !
अक्सर बेचैन रह कर देखना हमें
और अपने प्रेम तक को / धीरे-धीरे आदत बनते हुए पाना
अगर तुम सचमुच हम जैसे हो ही गए
तो गहरे असंतोष से भर / दोबारा प्रभु होने की ख्वाहिश करना
फिर जब तक प्रभु न हो जाओ / टूटे बिखरे रहना ।

शायद तब तक मैं भी तेरे संग / प्रभु होने को
तेरे मार्ग पर चला आऊं । □

कवि और साहिब

एक मिनट के लिए / खो जाइए साहिब !
इतना कुछ किया कराया है आप ने
अब क्या इतना भी नहीं कर सकते हैं आप ?

खो कर देखिए / फिर वह सब होने लगेगा
अक्सर आप के डर से ही नहीं हो पाता है
जो शायद हर बार ।
गायब हो जाइए / फिर देखिए
कैसे हिलता है हाथ
झर जाता है पेड़ से पत्ता
तरह-तरह की आवाजें निकालता है कौआ
सरसराती हवा / कैसे अचानक
पार करके निकल जाती है रोशनदानों को
माहौल की सां-सां
किस तरह चूक जाती है
कीचड़ का कमल बनाते-बनाते आप को ।

पर आपको इस से सरोकार ही क्या है आखिर ?
नौकरों और टोस्ट मुरब्बों की फिक्र के लिए
महंगाई भत्ते और अखबार पर बहस के लिए / भी तो
जरूरत पड़ती है किसी न किसी साहिब की ही ।
वैसे तो माहौल और गरीबी को गालियां निकालते
ढेर लोग हैं
फिल्मों ढाबों पान मसालों में / जिन्दगी उड़ाते
फिजूल लोग है
उन सब से तो अच्छे ही हैं न आप ।
रोटी पानी का ही तो मसला है
हो ही जाता है हल / देर सवेर सब का
फिर साहिब / संघर्ष और क्रांति से भी क्या हो जाएगा
आप की जगह कोई दूसरा साहिब आ जाएगा ।

हम कवि लोग भी यूं ही उनझते हैं आप से
चारणों, भाटों और गुरु गद्दियों वगैरह से
उलझ-उलझ कर भी / शायद चैन नहीं आया है हमें
इसी से फिर हारने की तैयारी किये हैं
चंद पार्टियों, परिवारों, डायरेक्टरों वगैरह के आगे
बाजीगरों और जादूगरों की नौबत तक आई
कविगिरि लिए खड़े हैं।
चलिए, हमारे मनोरंजन के लिए ही सही
जरा इधर आइए साहिब
बैठिए! / धरती के इस नंगे टुकड़े पर जम जाइए
महसूस करेंगे / तो बहुत जल्द लगेगा
कि धरती भी यह सोख लेती है
अब बंद आंखों से इस धरती को देखिए
बहुत जल्द लगेगा कि यह धरती नहीं
मांस का एक विशालकाय शरीर है
आपके नीचे ही नीचे
आसपास दूर तक फैला।
इस नर्म गुदाज शरीर में
धसने लगेगा बहुत जल्द.
आपका यह अपना-सा भारी भरकम शरीर।
एक मिनट के लिए सचमुच ही खो जाएगा
आपका यह सोया-खोया शरीर।

नहीं, जागिएगा नहीं घबरा कर साहिब!
कोई सम्मोहन नहीं है यह आप के मुनासिब
आपकी ही करतूत है
आपकी ही नजर है।
नहीं बुरा मत मानिए
मेरे इस हुनर पर खुश होइए साहिब!
डरिए मत
मेरा वक्त कभी नहीं आएगा
मेरे दरवाजे से निकल कर
एक कोई और / साहिब बन जाएगा। □

कटघरे में कवि

पूछो कवियों से / उनकी कविताओं में इस कदर क्यों प्रचारित हैं
चांद या आग या क्रांति जैसे शब्द ?
इसमें भला इन चीजों का क्या दोष है ?

सवेरा उगा / पर कहीं कोई आवेश नहीं था उसमें
लोगों को जगाने या ओस को भाप बनाने का।
ऋतुएं आईं और गईं / पर किस ऋतु ने चिंता की आदमी की ?
पतझड़ सब उजाड़ कर भी / कविता का विषय पता नहीं कैसे बना रहा ?
बरसात बाढ़ लाती हुई भी / सौंदर्य की फेहरिस्त से बाहर क्यों न कर दी ग
और कर भी दी जाए / और कितनी भी कविताएं आग क्यों न उगलें
उसके खिलाफ / क्या फर्क पड़ता है ?
हालांकि अस्तित्व और भविष्य के बिंब को प्रतीक बनाकर
कविता ने जरूर शोहरत पाई है कभी-कभी
पर इस में भला अस्तित्व और भविष्य का दोष ही क्या है ?
पूछो कवियों से !

अज्ञात के अंधेरे में गुम होने से डरता हुआ चिंतक
हड़बड़ी में कुछ सूत्रों को पकड़ कर दोहराता है
किनारे बैठे चिंतक के डर में कवि / बेहिचक घुस जाता है
दोहराए जा रहे शब्दों से हट कर
अजानी दुनिया के नये अर्थ और लय को पहचान लेता है
और फिर इसे प्रचारित करता है / कविता के नाम से
मगर इसमें अज्ञात या अर्थ या कविता का
आखिरकार दोष है ही क्या/पूछो कवियों से ! □

भस्मासुर

राख की खाद बनाने की नीयत से
भरे पूरे बाग को ही आग लगा दी तुमने !
आखिर सोचा क्या था
दुश्मनों को मिट्टी में मिलाकर
भभूत मल कर देह पर
निकलोगे शिव बन कर पुरखों के बाग से ?
विषपायी भस्मासुर ! वाह !
पिए बिना भस्मामृत / विष पीने की
सूझ ही कैसे गई तुम्हें ?
हमारी भस्म को खाद बना कर
इतिहास को गलत भाषा देकर
आदमी को भी करना चाहते हो परिभाषित
अपने भगवान की तरह ?

लेकिन हमें क्या तुम्हारे भगवान से ?
आदमी से मतलब है हमें ।
भगवान हो या न हो
फलता है आदमी ही
और तुम्हारे बाग भी फलदार तभी होते हैं
जब फल जाता है
तुम्हारे भीतर का आदमी । □

मध्ययुग के दलदल में फंसा आज

दलदल है अंधेरे का
बाहर आने की कोशिश
तरकीब है उल्टे और भीतर धंसते जाने की ।

एक सांवली झील है यहां / अपनी आंखों जैसी
दूसरों से हताश लोगों को जिसमें
दिखाई देता है अपना चेहरा
पहली दफा अपनी निगाहों से
लेकिन पहचान में ही नहीं आता वह उन्हें
इसलिए हो कर हताश करना चाहते हैं वे
इस काली झील में आत्महत्या
असन्तुष्ट हैं दूसरों की आंखों में झांकती / अपनी छायाओं से ।
दूसरों की भाषा में अपनी उम्मीदों से ।

मध्ययुग का देती हुई अहसास / किसी की आवाज
मांगती है हथेलियों पर रखे उनके सिर ।

लेकिन जब भी उतार कर अपने सिर
धरने लगे अपनी हथेलियों पर
पता नहीं कैसे गायब हो गए / उनके हाथ ?

हाथों की जगह / दिखाई देने लगे
दूसरों की चालाक निगाहों के सम्मोहन से रचे
पराई उम्मीदों की रेखाओं के जाल ।

और अब जबकि न उम्मीद बची है / न नाउम्मीदी
देता है दिखाई / कि जल्दबाजी है केवल
हर वक्त हथेली पर ही उठाए फिरना अपने सिरों को
भूले रहना धड़ के साथ उनके सम्बन्धों को ।

खुद से मिल कर पाएंगे वे कल को
सिर के चले जाने पर / पीछे छूट गए उसके ख्याल भर को
अंधेरे के चले जाने के बावजूद
खाली दलदल होकर रह गए अपने आप को । ☐

एक समाज प्रजातांत्रिक

एक चीयड़ा अपनी आत्मा को बेचने निकला
खाली हाथ लौट आया
ख्याल आया कि जमाना बदल रहा है फिर
ऐसी चीजें छिपी रहें लॉकर में
तभी कीमत पड़ती है उनकी
चीयड़ा लॉकर कहां से लाए ?
क्या किसी न्यायाधीश के घर जाकर शक्तिप्रदर्शन करे ?
भयभीत कर दे बराबरी, भाईचारे और आज़ादी के सिद्धान्तों को ?
और जब पेश हो किसी झूठे अभियोग के सिलसिले में
अन्यायमूर्ति के आगे
वह अपने पैन को अहिंसक बनाए रखने की जिद में
उसे खोलना भी भूल जाए !

आत्मा की कोख से खंजर के जन्म की घटना का
साक्षी हो जाए !
और जब सचमुच हो जाए यह सब
उस दिन के बाद चीयड़े की जिंदगी
खतरे में पड़ जाए !

बेशर्मी से हंसे न्यायाधीश
और आत्माएं चीयड़ों की
खिसिया कर देती रहें उसका साथ। □

एक प्रजातांत्रिक विद्रोह

वक्त के खिलाफ साजिश करने के इरादे से
मैं जुलूस में तख्ती उठा कर / सब से आगे हो लिया ।
राजधानी की दिशा में चलते हुए
नारों के दायरों में / कोल्हू के बैल-सा घूमने लगा
कांच की दीवारों से महावत-सा टकरा गया
सीख नहीं पाया / कभी कौआ, कभी बगुला होने की राजनीति
बन कर रह गया / स्टोर में पड़ा गूंगा बहरा अनाज
जिसे बाजार भाव चढ़ते ही / हाथों हाथ बेच दिया जाना था ।

इस पर विद्रोह किया मैंने / राजनीति की ईंटों को
चूर-चूर कर डाला / सख्त कंकालों पर मार कर / फिर चिल्लाया
कंकाल नहीं है यह / मेरे देश का लहू है
जम गया है शायद / विश्वास न हो तो अपनी धमनियां चीर कर दे
जमे हुए खून को पसलियों में बदला पाओगे ।
लेकिन किसी ने विश्वास नहीं किया
और मैं अपना चेहरा पहचानने की कोशिश में / हलाक हो गया ।

इसलिए अब / अपने बिखरे लहू की याद आते ही
लिटमस की प्रतिक्रिया के समान
मैं लाल हो उठता हूं / और तुम पीले
जल्द ही व्यर्थ हो जाता है यह युद्ध
जिस में तुम मुझे करते आए थे / बारूद की तरह इस्तेमाल ।
अब लगता है कि मुझ में / और एक रैश ट्रक ड्राइवर में कोई फर्क नह
कटे हुए भूगोल की तरह / अधूरा जन्म लिया है मैंने
अब चेहरे लगाकर भला कब तक जिया जा सकता है ?
और खड़ा किया जा सकता है / बयार होने का धोखा
जब कि मौसम आंधी भी हो सकता है / और तूफान भी ।
जरा ध्यान से देखो मुझे
मैं गांव से शहर होने की प्रक्रिया मात्र हूं / कोई क्रांति नहीं हूं

जब शहर हो जाऊंगा / .तो खुद ही चल-दूंगा
   बदलाव का झंडा उठा कर
अभी तो खिसकती हुई जमीनों की मिल्कीयत पर,
हाथों की गिरफ्त मजबूत करते हुए / धर्म के फैवीकोल से
पेश किया करता हूं क्रांति का नाटक भर
अपनी सरदारी और सरकार बनाने की खातिर ।
इसलिए मुझे खत्म करने के लिए अभी तक
तांडव नहीं / दियासिलाई की एक तीली ही काफी रहा करती है ।
मुमकिन नहीं लगता अब / कि साम्प्रदायिक दंगों में बहे खून से सने गुलाब
   फिर से सफेद भी हो पाएंगे बहुत जल्द ।
इसलिए अब / जब भी हीनता से भरता हूं
कांपते हाथों से अपने आप पर इस तरह पिस्तौलें दागता हूं
   कि हर दफा उनका निशाना चूक जाए
   और मैं बचा रह जाऊं
   माहौल, सरकार और दोस्तों को गालियां निकालते जाने के लिए ।
   प्रजातंत्र में इन बातों की आजादी की खैर मनाने के लिए । □

कछुआ संस्कृति

नीली पट्टियों वाला हैट लगाए / आई लोकशाही
संवेदनहीन / अपनी ही उपजाई भयानक ठंड के बीच
      खाए चकरघिन्नी ।
धीरे-धीरे चले / फैलाए संस्कृति शनिश्चरी कछुओं की ।

समय को यह किसने बांधा है
और प्रगति की रफ्तार को मात्र दृष्टिबंध से रोका है ?
फैलते हुए / मारक युद्धों के बीच से / गायब कर दिए हैं
      किसने रोजी, सेहत और प्यार के आंकड़े ?
एक हिम पशु है वह / जो जमे हुए रक्त को
लोगों की धमनियों से उखाड़-उखाड़ पीता है

महाबलवान् होकर भी छिप कर घात लगाता है
मिलो तो मुस्कराहटें अपार लिए
गले लग-लग चार-चार आंसू रोता है / चुपचुप।

दूर की कोड़ियां और धर्म के घोड़े
सत्ता की बिसात पर उसकी / चलते हैं आड़े टेढ़े
और साहित्यकार उसके न होने का / रचाते हुए ढोंग
और नक्कारखानों में बजाते हुए तूती
बड़ी दुमदायी यात्राएं करते हैं
शामियानाजे से लेकर रजतपटों तक।
सभी को हैरान करते हैं
बड़ी-बड़ी सांस्कृतिक क्रांतियों का उड़ाते हुए परचम।
उनसे क्या उम्मीद
इसलिए मैं तुम से ही मुखातिब हूं / मेरे प्यारे जन!
हिमपशु से नहीं / लड़ तू सीधे बर्फ से ही अब
यानी उस सायबेरिया और अंटार्कटिका से ही
जो अफ्रीका से लेकर एशिया तक ही नहीं
फैला है पहले और दूसरे विश्व में भी।
योरुप में जिसे सभी बसंत के नाम से जानते हैं
और अमरीकी जिसे ताजी खिली धूप मानते हैं
यह अलग है बात कि उसमें
बाकी दुनिया के लोग ठिठुर-ठिठुर कांपते हैं।

यह बर्फ कल मेरे घर में भी गिरी है
मेरे सारे काव्य और करुणा को कुंद कर गई है।
अब सुविधाएं तक मुझे गर्क किए जाती हैं
मेरी पत्नी और बेटी के दुख को ही बढ़ाती चढ़ाती हैं।
लेकिन काव्य से निष्कासित होने पर भी
करुणा / बिद्ध कीट-सी
रात दिन मेरे सिरहाने के नीचे कुलबुलाती है
और अपने फैलाव के लिए
लफ्जों को ही नहीं / मित्रों को भी
महाकाव्य के सर्गों की तरह / इकट्ठा करना चाहती है।

इसलिए लड़ ! मेरे प्यारे जन ! तू मुझ से भी लड़ !

अपनी सुषुप्ति के खोल को भेद कर
एक कछुआ भी चल निकला / तो यही बहुत होगा
और कच्छप चाल से / पीछे-पीछे उसके
जो चलता हुआ नजर आएगा
कल वह मैं भी तो हूंगा। □

निर्णय का क्षण

गहरे मे घास के
हूं मैं।

घास फूल
यानी झोंपड़पट्टी का / कर्णफूल
घास-घास चढ़ा
घर आंगन तक आया।

बहुमत से
सारी वनस्पति में
लो हुआ व्यापक !
प्रजातंत्र मे
फिर भी कौन
सत्ता का अधिष्ठापक ?
यूकिलप्टस ! यूकिलप्टस !
ठहर ! ठहर !
बस आ ही रहा हूं मैं
गहरे में घास के
हूं मैं। □

चिड़िया फूल है

चिड़िया फूल के पास आई है।

फूल कहां है ?
चिड़िया की सांवली चोंच
रस पीने की प्यासी बेचैनी में
फूल बन / उग आई है पेड़ की फुनगी पर।

चिड़िया कहां है ?
फूल का रंग गंध भरा जादुई मन
बांझ कहलाता
अगर चिड़िया बन कर
खुद से इस तरह खेल न करता।

फिर कौन बताएगा
कि कौन आया है किस के पास ?
फूल चिड़िया के पास
या चिड़िया फूल के पास ? □

तुम्हें पूरा जानने की कोशिश में

कुछ है जो बौछार के गुजर जाने पर भी शेष रह जाता है।

स्मृति बड़ी चीज है / गुजरे हुए को वर्तमान कर देती है
पर यह लो / मैं अपने चित्त की आखिरी केंचुल भी छोड़ता हूं
भूल जाता हूं कि बूंद की बेपरवाह चोट भी सुकून देती थी
निस्संग हवा का स्पर्श झुरझुराता हुआ हड्डियों में उतर जाता था
भूलता हूं / यह बौछार थी कि निरा प्यार
मगर यह सब खो जाने पर भी कुछ है जो गुजरता नहीं है।

अगर तुम आए होते / बौछार का बहाना बना कर
तो मुझ पर ही बरसते
इन हजार-हजार पौधों के पत्तों मे / फूल-सी ताजगी न बन जाते
इसलिए बौछार में जब-जब / तुम्हें देखने की कोशिश करता हूं
मैं खुद को उतना ही खोता चला जाता हूं ।
यही वजह है कि तुम्हें पूरा जानने की कोशिश में
मुझे ही नाचना पड़ा / उन पेड़ों पर पत्तों की तरह
और सच जब मैं लौटा / तो खुद ही फूल बन कर लौटा
अपने रोंएं रोंएं मे बौछार बन कर लौटा ।
कुछ है जो बौछार के गुजर जाने पर भी शेप रह गया है
क्योंकि अब मैं ही बरसने लग गया हूं ।

बौछार के आने पर शुरू में लगा था
जैसे कि पेड भी हैं / पत्ते भी है / बौछार भी है / और मैं भी हूं
अब बौछार के गुजर जाने पर लगता है
जैसे पेड और पत्तों के साथ / बौछार अब भी हैं
सिर्फ मैं ही खो गया हूं । □

आया फिर होश

होश के पौधों पर
आए है सहभाव के फल ।

होश के कारण / ये हवाएं
ढूंढती फिर रही हैं तुम्हें
एक पल का भी किए बिना विश्राम ।

तुम को ही खोज रही होंगी / ये ऋतुएं
हरे भूरे सुनहरे और पीले कपड़ों में
छिप कर भी लेकिन
तुम कहां छिप पाओगे इन से ?

आओ कि होश अलगाव को व्यर्थ कर दे
मिलो कि सूरज होश से और तपे
झरो कि होश-होश के लिए जगे । □

असीम को हमेशा घसीटे लिए फिरना
मत छेड़ो यह गोरखधंधा
अभी मुझे जीने में स्वाद आता है।

भोजन को रस ले कर खाने से बड़ी पवित्रता
अभी मैंने नहीं जानी।
जिस्म के प्रेम से रोमांचित होकर
जिस्म के भार से जो हल्कापन मिलता है मुझे
वह ही मुक्ति है मेरी।
दोस्तों के बीच छोटे मोटे मसलों पर
हल्की फुल्की बौद्धिक बातें / मेरा आनंद है।
मैं जानता हूं अपने फर्ज भी / और उनके लिए लड़ना भी
बेशक अपने साधनों से आगे बढ़ कर
किसी की मदद भी नहीं की होगी मैंने
सब के साथ मिल-जुल कर चलना
और हमेशा अपने सीधे सच्चेपन के पक्ष में रहना
मुझे तो बस इतना ही आता है
मौत की आग में तिल-तिल जलना
मत सिखाओ मुझे
मुझे तो मिलें / बस सीधी सच्ची आहुतियां ही। □

सहजता की तरफ

व्यर्थता बोध कहीं नहीं था
इसलिए जो कुछ चला आ रहा था आज तक
मेरे साथ-साथ / वह सब व्यर्थ हो गया था
मेरी गंगोत्री पर चोट कर डाली थी
उन्हीं पुरोहितों ने
जो मेरी जन्म की घटना के साक्षी थे।

देखने भर का फर्क

सिर्फ देखने भर का फर्क था
और तुम्हारी बिंदिया / राग से आज्ञाचक्र बन गई।
अभी तक बीज भी नहीं लगते थे पेड़
और अभी-अभी / किसी गहरे आकाश में फूल से गंधाने लगे।
एरोडा नदी की तेज धार / सिर्फ डुबाने वाली न रही
समुद्र में डूब मरने की आतुरता में नाचती हुई मीरा हो गई।
अपने ही दोस्तों के लिए फेंकी हुई मुस्कराहट ने
मुझे ईर्ष्या नहीं दी इस दफा
उनकी संतानों पर भी पिता होने का अधिकार दे दिया।

सच, देखने भर का ही तो फर्क था
और भोजन का स्वाद बना रहा
मगर स्वाद ने बांधना बंद कर दिया।
पहले मैं खोजता फिरता था मंत्रों को शास्त्रों में
अब हवाओं नदियों और पत्तों ने शास्त्र बन कर
मुझे खोजना शुरू कर दिया।
क्या हुआ यह सब / कैसे हुआ ? ☐

सीधी सच्ची आहुतियां

कहां हो तुम / मेरी मौत !
यह तुम ने सिखाया है मुझे
खुद में अन्य पुरुष की झांकी देखना
मरने की पवित्रता को घूंट-घूंट पीना
प्रेम को मूर्च्छा के स्वाद की तरह लेना
असमय को समय में संचनित करना

असीम को हमेशा घसीटे लिए फिरना
मत छेडो यह गोरखधंधा
अभी मुझे जीने में स्वाद आता है।

भोजन को रस ले कर खाने से बडी पवित्रता
अभी मैंने नही जानी ।
जिस्म के प्रेम से रोमांचित होकर
जिस्म के भार से जो हल्कापन मिलता है मुझे
यह ही मुक्ति है मेरी ।
दोस्तो के बीच छोटे मोटे मसलो पर
हल्की फुल्की बौद्धिक बातें / मेरा आनंद है।
मैं जानता हू अपने फर्ज भी / और उनके लिए लड़ना भी
बेशक अपने साधनों से आगे बढ़ कर
किसी की मदद भी नही की होगी मैंने
सब के साथ मिल-जुल कर चलना
और हमेशा अपने सीधे सच्चेपन के पक्ष में रहना
मुझे तो बस इतना ही आता है
मौत की आग मे तिल-तिल जलना
मत सिखाओ मुझे
मुझे तो मिलें / बस सीधी सच्ची आहुतियां ही। □

सहजता की तरफ

व्यर्थता बोध कही नही था
इसलिए जो कुछ चला आ रहा था आज तक
मेरे साथ-साथ / वह अब व्यर्थ हो गया था
मेरी गंगोत्री पर चोट कर डाली थी
उन्हीं पुरोहितों ने
जो मेरी जन्म की घटना के साक्षी थे ।

चाहता था मैं / कि मोरों के संग नाचूं
और प्रेयसी को लुभाऊं / वंसी बजाऊं / लोक लाज छोड़
दोस्तों के साथ मिल कर अन्न खाऊं
मिल कर मेहनत करूं / पड़ोसियों के कपड़े पहन पाऊं
उन्हें मेरे कपड़े पहनने का हक हो
सब मिल कर एक सी बातें करें / एक-सा विचार
एक-सा संकल्प ।
मगर सभ्यता और संस्कृति की दुहाई दे कर
चंद सख्त से लोगों ने मुझे
सिद्धांतों से माथा पच्ची करनी सिखा दी
वक्त बीता / और सूरज ने चमकना छोड़ दिया मेरे लिए
मुझे देख कर हवा / मस्ती से बहना भूल जाती
आसपास मेरी गंध पाकर / मुरझा जाते फूल
मेरे पांव के नीचे उग आता मरघट / अंधेरा बरसने लगता ।

इस पर मैंने / अपनी व्यर्थता को सहेजा / बोया
अपने मल मूत्र को उतार कर अपनी जड़ों में
अंकुरा गया अपनी निष्क्रियता के खोल को फाड़ कर
विरोध को बहा कर / नीचे से ऊपर की तरफ
अपने सार तत्व को बनाने लगा / अपने अस्तित्व का उत्पादन । □

उद्घाटन

मैं यहां अपने मित्र को तलाश रहा था ।

उसे यहीं होना चाहिए था
मेरी प्रतीक्षा में ।

उसे जल्दी मिलने की आतुरता में
मैंने पहले से ही उसकी बाबत पूछना शुरू कर दिया
लोगों से ।

कहे सुने मुताबिक
पूरे शहर का चक्कर लगा कर
मुझे वही लौट आना पड़ा ।
मेरा मित्र अभी तक वहीं खड़ा हुआ
मेरी प्रतीक्षा कर रहा था ।

यह प्रार्थना का क्षण था
मैंने मांगा —
मुझे मेरी ही आंखें मिलें । □

कविता क्यों लिखें

अब तक कविता थी
आग कहां थी ?

अब आग भर है
न हम हैं / न कविता ही ।

आग / कविता की राख को
जीवन की गंगा में
विसर्जित करने निकली है ।

हो सकता है / इसके पानी से
फिर उगने लगें
कविता के पेड़ पर पेड़ ।

उगेंगे पेड़
पर वृक्षारोपण करने वाले
न नेता होंगे / न हार वाले
खो जाएंगे कर्ता
मगर उगेंगे पेड़ ।
पेड़ों की छाया में

ले कर सांस
हम खुद हो जाएंगे पेड़
फिर क्यों लिखेंगे कविता
अपनी या पेड़ की बाबत ? □

हंस और बूढ़ी मां

दूध पीने वाला हंस
उड़ने को है।

अपने गर्भ को / अभी तक सलवट पालती है
बूढ़ी मां
मोहित / करती है चिरौरी
कि वह फिर से
बालक से भ्रूण हो जाए।

फिर से जन्म लेने के लिए
लाजिमी है मरना
इसलिए उसने हंस को उड़ जाने दिया है।
और मां की बाबत / कविताएं करने लगा है
भ्रम में है
कि कविताएं / जन्म दे डालेंगी / एक नये हंस को

लोगों के लिए
कौतुक की चीज हो गया है वह।
उसके स्मारकों और मूर्ति स्तंभों से
अनुपस्थित है उसका हंस।
वाक्य और चि
अभिशप्त है /
बूढ़ा

मसीहा के खिलाफ

पेड़ होकर भी मैंने उसे कहां जाना
जिसने जड़ों से रस को ऊपर उठाया
और जो
फुनगियों पर अंकुर, पत्ते और फूल बनने का काम
मुझे सौंप कर
खुद प्रलय का मसीहा हो गया।

नाचता मैं रहा
नटवर वो कहलाया
बन बन कर मिटा मैं
प्रलयंकर वो हो गया
समय को रूप, रंग और परिभाषा मैंने दी
काल वो कहलाया।

सब कुछ कर करा कर भी
उसे कहां जान पाया!
और जिसे जान ही नहीं पाया
उसे छोड़ कैसे पाऊंगा?
विरोध को सार्थक कैसे करूंगा? □

अस्मिता

अंधेरे को जीतने के सवाल पर
शंकित सवेरा / रुका रह गया कुछ देर
बंद अपने ही खोल में!
हैरान परेशान लोग धरती के
लगे खोजने / अंधेरा भगाने के अन्य उपाय :

ले कर सांस
हम खुद हो जाएंगे पेड़
फिर क्यों लिखेंगे कविता
अपनी या पेड़ की बावत ? ☐

हंस और बूढ़ी मां

दूध पीने वाला हंस
उड़ने को है।

अपने गर्भ को / अभी तक सशक्त मानती है
बूढी मां
मोहित / करती है चिरौरी
कि वह फिर से
वयस्क से भ्रूण हो जाए।

फिर से जन्म लेने के लिए
लाजिमी है मरना
इसलिए उसने हंस को उड़ जाने दिया है।
और मां की बाबत / कविताएं करने लगा है

भ्रम मे है
कि कविताएं / जन्म दे डालेंगी / एक नये हंस को।

लोगों के लिए
कौतुक की चीज हो गया है वह।
उसके स्मारकों और मूर्ति स्तंभों से
अनुपस्थित है उसका हंस।
वाक्य और विचार के बीच
अभिशप्त है / त्रिशंकु सी लटकने को
बूढी मा। ☐

मसीहा के खिलाफ

पेड़ होकर भी मैंने उसे कहां जाना
जिसने जड़ों से रस को ऊपर उठाया
और जो
फुनगियों पर अंकुर, पत्ते और फूल बनने का काम
मुझे सौंप कर
खुद प्रलय का मसीहा हो गया।

नाचता मैं रहा
नटवर वो कहलाया
बन बन कर मिटा मैं
प्रलयंकर वो हो गया
समय को रूप, रंग और परिभाषा मैंने दी
काल वो कहलाया।

सब कुछ कर करा कर भी
उसे कहां जान पाया!
और जिसे जान ही नहीं पाया
उसे छोड़ कैसे पाऊंगा?
विरोध को सार्थक कैसे करूंगा? □

अस्मिता

अंधेरे को जीतने के सवाल पर
शंकित सवेरा / रुका रह गया कुछ देर
बंद अपने ही खोल में!
हैरान परेशान लोग धरती के
लगे खोजने / अंधेरा भगाने के अन्य उपाय।

लड़ाई के साधन जुटा कर
ओढ़ कर लोहे की चादर
अंधेरे में जा भिड़ा सवेरा
लेकिन जीत न पाया / अपने कमज़ोर दुश्मन को भी ।

हार कर / करने से पहले आत्म समर्पण
फेंक कर लोहे की चादर
निहारा उसने स्वयं को ।
फिर निहारा अंधेरे को
अब वह वहां नहीं था । □

उलटबांसी

चूक जाता है तनाव
असफल होने के लिए हमारे होते ही तैयार
बिना हराए हमें / खुल जाता है रास्ता जीत का ।
मुंदते ही तनाव के / दिखाई देते हैं खुली आंखों से
धूल भरे आकाश में भेदियों से घूमते
बादलों के पारदर्शी टुकड़े
हमारी पकड़ से परे / हमारी टोह लेते हुए सदा ।

भगवा कपड़ों वाली असफलताएं
सहलाती हैं हमारे पसीनों भरे माथों को
आजाद सदी के गुम माहौल में
कभी कभार चलने वाली हवाओं की तरह
छुअन जिन की / लगती है
मेहनती हाथों की खद्दर जैसी खाल की तरह ।
जो हुए बिना असफल / तैयार हैं हार के लिए हरदम
तपते हुए सूरज में मिलाते हैं अपनी आंखें
ठहर जाता है एक बिंब उनकी आंखों के पर्दे पर

किसी सांवले गदबदे बच्चे का
होता हुआ चस्पां / इस मुल्क के हर आदमी के चेहरे पर
हर उस आदमी के चेहरे पर
सफल होने की खींचातानियों में जो
कसता जाता है अर्गलाएं तनाव की / अपने अक्स पर
विवश / बंद रास्तों पर
स्थितप्रज्ञ निगाहों से झांकने की खातिर ।
इस तनाव से बच्चे पड़ जाते हैं उसके हाथों के स्पर्श
रिश्तों की गर्मी से परे / घरों के खिलाफ ।

अब सवाल यह है / कि कौन चिनेगा
इस आदमी के मजबूत हाथों पर / इसके फल
राजी कर लेगा इसे भी / असफल हो सकने की खातिर / कभी कभार
जिससे हारने के लिए इसके होते ही सँगार
ढीला हो जाएगा सारा तनाव
दिखाई देगा इसे भी / उड़ती हुई धूल के परे का आकाश । □

अंधेरे के पर्यायवाची

ऊपर रोशनी का तूफान गरज रहा है ।
जर्रे-जर्रे की नाभि से निकलता तेजस्वी आकाश
काल और दिशा की नुक्करों को झाड़ता हुआ
भंवर की नाईं गुफानुमा रास्ते में खुलता है ।
यह प्रकाश-मार्ग है ।
इसके पार मेरा पिता रहता है ।

नीचे सीमित सुरक्षा के आशंकित आश्वासन से
अपने-अपने कमरों के दरवाजे खिड़कियां बंद करने में लगे हैं
इस धरती के हजारों प्राणी
भीतर अंधेरा कर के
फैशनेबल क्रांति, खद्दर और प्रेमिका की मांद में
घुसने की कोशिश करते हैं ।

लड़ाई के साधन जुटा कर
ओढ़ कर लोहे की चादर
अंधेरे से जा भिड़ा सवेरा
लेकिन जीत न पाया / अपने कमज़ोर दुश्मन को भी।

हार कर / करने से पहले आत्म समर्पण
फेंक कर लोहे की चादर
निहारा उसने स्वयं को।
फिर निहारा अंधेरे को
अब वह वहां नहीं था। □

उलटबांसी

चूक जाता है तनाव
असफल होने के लिए हमारे होते ही तैयार
बिना हराए हमें / खुल जाता है रास्ता जीत का।
मुड़ते ही तनाव के / दिखाई देते हैं खुली आंखों से
धूल भरे आकाश में भेड़ियों से घूमते
बादलों के पारदर्शी टुकड़े
हमारी पकड़ से परे / हमारी टोह लेते हुए सदा।

भगवां कपड़ों वाली असफलताएं
सहलाती हैं हमारे पसीने भरे माथों को
आजाद सदी के गुम माहौल में
कभी कभार चलने वाली हवाओं की तरह
छुअन जिन की / लगती है
मेहनती हाथों की खद्दर जैसी खाल की तरह।
जो हुए बिना असफल / तैयार हैं हार के लिए हरदम
तपते हुए सूरज से मिलाते हैं अपनी आंखें
ठहर जाता है एक बिंब उनकी आंखों के पर्दे पर

किसी सांवले गदबदे बच्चे का
होता हुआ चस्पां / इस मुल्क के हर आदमी के चेहरे पर
हर उस आदमी के चेहरे पर
सफल होने की खींचातानियों में जो
कसता जाता है अर्गलाएं तनाव की / अपने अक्स पर
विवश / बंद रास्तों पर
स्थितप्रज्ञ निगाहों से झांकने की खातिर ।
इस तनाव से कच्चे पड़ जाते हैं उसके हाथों के स्पर्श
रिश्तों की गर्मी से पके / घरों के खिलाफ ।

अब सवाल यह है / कि कौन खिनेगा
इस आदमी के मजबूत हाथों पर / इसके कल
राजी कर लेगा इसे भी / असफल हो सकने की खातिर / कभी कभार
जिससे हारने के लिए इसके होते हों तैयार
ढीला हो जाएगा सारा तनाव
दिखाई देगा इसे भी / उड़ती हुई धूल के परे का आकाश । ☐

अंधेरे के पर्यायवाची

ऊपर रोशनी का तूफान गरज रहा है ।
जर्रे-जर्रे की नाभि से निकलता तेजस्वी आकाश
काल और दिशा की नुक्करों को झाड़ता हुआ
भंवर की नाईं गुफानुमा रास्ते में खुलता है ।
यह प्रकाश-मार्ग है ।
इसके पार मेरा पिता रहता है ।

नीचे सीमित सुरक्षा के आशंकित आश्वासन से
अपने-अपने कमरों के दरवाजे खिड़कियां बंद करने में लगे हैं
इस धरती के हजारों प्राणी
भीतर अंधेरा कर के
फैशनेबल क्रांति, खद्दर और प्रेमिका की मांद में
घुसने की कोशिश करते हैं ।

इस कदर रम जाते हैं उस घुटन में
कि कुछ ही सदियों बाद भूल जाते हैं
इस धरती पर कभी नाम-निशान भी था रोशनी का ।

अपने व्यक्तित्व के विवरों में अंधेरा छिपाए
संदेह से निकलते हैं कमरों के बाहर
उनके और रोशनी के बीच अंधेरा पर्दे की तरह तन जाता है ।
और वे जो अंधेरे के प्रति जाग कर
खिड़कियां खोल रहे हैं
उनके कमरों से अंधेरा चुंबकीय धूल की तरह उठता हुआ
संसद् और सूरज तक को
गर्दो-गुबार में लपेट लेने की जुर्रत कर रहा है ।

स्वार्थ और इंद्रियों के विषय
झंडियों और ध्रुवों की तरह
खुद को विपरीत दिशाओं में बेतरह खींचते हुए
उन्हीं के व्यक्तित्व को जैसे नष्ट कर देते हैं
अपनी अफरा-तफरी में जबरन घसीट कर ।

अपने व्यक्तित्व, कमरे और अंधेरे को
धरती पर एक साथ छोड़ कर
रोशनी की तरफ निकल गया मैं
और अचानक मैंने जाना
कि अंधेरा, व्यक्तित्व और कमरा
ये तीनों चीजें पर्यायवाची थीं । □

रक्तजीवी ज्ञान

लपकती है छिपकली
हर हिलती हुई छाया पर ।
नौकरी, घर-परिवार, और अकेलेपन तक
ढेरों छायाओं का एक हुजूम हूं मैं ।

ये सब किसकी छायाएं हैं / पूछता हूं छिपकली से
गोया उकसाता हूं उसे
झपट्टा मार कर निकल जाता है वक्त
मुझे पूरा निगले बिना
देकर चला जाता है
मिटा डालने के भय की एक और छाया।

मेरा ज्ञान / एक बिंब की तरह
फड़फड़ाता है / मेरी किसी अधूरी कविता पंक्ति में
कीड़ा है ज्ञान
पीता है रक्त मन और आत्मा का
इस अनचाही वस्तु से
छुटकारा दिलाने आती है छिपकली
सब विचारों को छूंछा साबित करके
पता नहीं कहां चला जाता है वक्त।

होते ही प्रकाश
समो कर सब छायाओं को अपने भीतर
वक्त को ही इस्तेमाल करता हुआ / अपने ज्ञान की तरह
कीड़े के धरातल से ऊपर उठ कर
जन्म लेता हूं / एक आदमी की तरह
समझता हूं
भय के जाते ही / चला जाता है साम्राज्य
अंधेरे की छिपकलियों का
वक्त खाली अंधेरा ही तो नहीं होता है। □

समय और स्थान से आजाद होते हुए

घड़ी को ज्यादा चाभी भरते हुए / देखा मैंने
वक्त की रफ्तार को और तेज होते हुए
और टूटते ही उस चाभी के / आजाद होते हुए वक्त से / अपने आप को।
वक्त से / या वक्त की मिल्कीयत से ?

यह भी तो पूछा मैंने / उस वक्त अपने आप से ।
अपने पिछड़ेपन पर होकर क्रोधित / चल दिया माथे पर सींग उगा कर ।
अपनी-अपनी जगह को जकड़ कर बैठी हुई
सड़कों और पगडंडियों ने खुद को
कुछ रुके हुए लोगों के हाथों में / डंडों की तरह छोड़ दिया।
और फिर खदेड़ दिया गया मुझे / शहरों, राज्यों और विदेशों से बाहर
सभी जगहों से होकर निष्कासित
चटखता हुआ ऊपर से लेकर नीचे तक
पीछे की तरफ उड़ते हुए बालों की तरह / छोड़ता हुआ वहीं पीछे वर्तमान को
आग की लपट के चाबुक-सा बोला—सटाक्
फूटती नसों से गिरी लहू की चंद बूंदें
किसी बूढ़े की लाल दाढ़ी में बदल कर
जादू-सा करतीं / सड़क के अगले मोड़ से कहीं गुम हो गईं—
आजाद कर दिया स्थान ने भी वहीं से मुझे ।
स्थान ने / या स्थान की मिल्कीयत ने ?
यह भी तो पूछा मैंने / उस जगह अपने आप से ।
अब लगा कि प्रकृति का भोजन होकर / शून्य हुआ जाता हूं
जिस्म नहीं / जमा हुआ कोहरा पहने हूं
एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर मेंढकों-सा फुदकता जाने कहां चला जाता हूं ?
फिर भी छत है कहीं और कोई फर्श / जो मुझे टिकाव देते हैं
हिमालय सा ऊंचा या कीटाणु से छोटा—ये मेरे बनाए मूल्य थे
जिन्हें तोड़ रहा था मैं खुद अपने हाथों से।
बीजों को पचा कर बदल रहा था / पेड़ों के बिंबों में
देखा मैंने अपने पीछे एक अंधेरा / आगे नियम
और दोनों के बीच झूलती हुई अपनी आत्मा
सरकंडों के जंगलों में फैली अपनी दाढ़ी
और किरणों के ऊबड़ खाबड़ परावर्तन में / पलकों के बाल
दिखाई दी यहां आकर एक और घड़ी
मेरा होना ही चाभी थी उसकी / और चलना वक्त की रफ्तार
लौट आया फिर अपने भीतर / वक्त के साथ साथ
बांध कर पीठ को सामने की अर्गलाओं से
पा गया स्थान के छिपे हुए ताले को

खुद को लगाकर उसमें चाभी की जगह / सचमुच हो गया आजाद
समय और स्थान की मिल्कीयत से ।
और साथ ही समय और स्थान से आजाद हो जाने की इच्छा से ।
एक नये आदमी की मानिंद जन्म लिया मैंने
हो गया कसौटी / इतिहास और परिवर्तन तक की
अब मुझे पछाड़ना या मुझ से पीछे रह जाना
मुमकिन नहीं था किसी के लिए
नष्ट करने की जगह द्वन्द्वों विरोधों तक को
समझ कर उन्हें / कर रहा था समर्पित
क्षण-समय ही प्रेम / हर जगह ही सहयोग के लिए □

पीपल गाथा

ठीक जहां से / मुख्य तना पीपल का
बंट रहा था अनेकों टहनियों-उपटहनियों में
उसकी उलझी हुई जटिल संरचना पर रीझ कर
आरे से कटवा लाया वहीं से उसे
घर भर में सभी को दिखाता फिरा ।
सभी खुश थे
पत्नी के लिए सजावट / मां के लिए पवित्रता / पिता के लिए प्रकृति
और बच्चों के लिए एक नयी निराली चीज था
यह लकड़ी का टुकड़ा
जिसे आंगन में रखकर / आस पास गोल-गोल घूमने लगे थे / सभी बच्चे
गाते हुए — बोल मेरे मगरमच्छ कितना पानी !

तुलना ऐसी असभ्य-सी जान पड़ी मां को
खोजने लगी वह उसमें / नाग नथैया की प्रतिमा को
मां के ऐसे बचपने पर हंस दिए पिता
सुबह की सैर को जाने की जगह / आज उसे छू दिया
और उसे ही प्रकृति की निकटता का चिन्ह समझ
बैठ गए पढ़ने अखबार ।

'वार्निश ले आई पत्नी उस दिन बाजार से
'फिर लाल रंग को करने लगी पेंट / कला कौशल से
बाहर की छाल के हर उतार चढ़ाव को
और उभारने के अंदाज से ।

इधर कविता लिख रहा था मैं
छाल को इतना सजते संवरते देख
खोजने लगा उसमें / मानव स्वभाव को
तभी उस गोपीम में मुझे उगता दिखाई दिया / एक और पीपल ।
लगता था मानों / भाषा में जीवन का विराट तना
खोजता हुआ अपने रूप को
अटका जाता हो उसी छाल में ।

अब तो हर लम्हे के बाद / एक नये रूप को प्रकट करता हुआ
छाल को केंचुल की तरह उतारता हुआ
'कुछ और ही उठ बढ़-सा जाता / लगता था पीपल ।

यह सारा करिश्मा धूप हवा पानी का खेल था
'या उसकी अपनी संभावनाओं का उद्‌घाटन
और या मेरे अपने भविष्य की चेतना
कर रही थी अख्तियार कोई शक्ल ?

'नहीं, इस पीपल के खंड में मौत ही छिपी नहीं पेड़ की
और न ही यह अकेला जूझता जाएगा
'मेरे ड्राइंगरूम में छाई चुप्पियों या अट्टहासों से
यही तो वह अवसर है / जब मेरी कविता सीखेगी
जीवन के संघर्ष से
'कि कविता में लड़ना नहीं / लड़ने का मजा जरूर उतर आएगा
लेकिन संघर्ष में जीत जाने से ही कोई कवि नहीं कहलाएगा ।

'ड्राइंगरूम में फूटता हुआ / एक पूरा पेड़ पीपल के खंड से
दीखता रहेगा मुझे / अपनी कविता में अखंड
जब कि हकीकत में जर्जर होता हुआ वह खंड
बहुत जल्द मेरी मां के पवित्र भाव को चर जाएगा

मेरे पिता की प्रकृति में / बूढ़ी विचारधारा का विष मिल जाएगा
और बच्चों के कौतूहल और पत्नी की सजावट पर
पुरानेपन और आदत से जन्मी / ऊब का शासन हो जाएगा ।
फिर एक दिन कबाड़ी के पास ले जाकर फेंकते हुए उसे
मुझे याद आएगा गांधी की बकरी का जबड़ा
जिसे दक्षिण अफ्रीका में बोया
युवा कवि मोलोयज के रक्त से नहलाएगा
सारे विरोधों के बीच / तीसरी दुनिया के माथे मढ़ा गया
महाशक्तियों के साथ हर संघर्ष / फिर एक दिन
उसी जटिल पीपल के खंड में बदल जाएगा
जिस पर लिखा गया इतिहास
किसी के लिए परंपरा-सा पवित्र होगा
किसी के लिए प्रकृति की ओर वापसी सा सार्थक
और कुछ के लिए कौतूहल और प्रदर्शन ।

कबाड़ी को इस सब से क्या मतलब
चाहे विश्व इतिहास ने एक करवट और से ली हो
या आगे बढ़ गई हो दुनिया की सभ्यता / एक कदम और
उसे तो चंद सिक्कों से थोड़ा चीजों को खरीद लेना है
और इंतजार करनी है कि कब कोई
नवधनाढ्य या सिरफिरा शोधार्थी आए
और कब्र में गड़ गए पीपल के इतिहास को
इस जटिल संरचना के सहारे
अनुमानों से फिर जीवित करे । □

बिल्लियों की आत्मकथा

घुटनों पर बैठ कर चिरौरी की / पूंछ हिलाई
तब कहीं जाकर / देश के नक्शे की तरह टेढ़ी मेढ़ी
जली फुंकी एक रोटी पाई
चलो, हम बिल्लियों की मेहनत कुछ तो काम आई ।

नीचे की तरफ झुक कर
डाल कर जोर अपने पंजों पर
उछलने और हमला कर देने की कला को
हमें इसी नम्रता ने बार-बार सिखाया ।

घाट-घाट की रोटियों को देखा है हमने
चौकोर परांठों से लेकर पापड़-सी गोल रोटियों तक
चखा है सभी का स्वाद / और पाया है एक ही निष्कर्ष
जिस किसी भी आकार में बिली हो रोटी
बेलने वाले की ओर से वह सिर्फ एक सूचना होती है
या एक चेतावनी / कि उनकी सुविधा की दाल गले
तो देश के नक्शे को वे / दिखा देंगे एकदम सीधा कर के
अपनी रोटी के आकार में काट तराश के ।
सब को सीधा कर देने के इस जोश में—
सभी सीधी करते हैं अपनी रोटियां केवल
और घात में रहती हैं हम बिल्लियां
सीधी या टेढ़ी कैसी भी बिली हो रोटी
हमें तो मतलब होता है / रसोई द्वार के खुला छूट जाने से ही
या रईसी की शान में
कुछ ज्यादा ही जूठन छोड़ दिए जाने के / उनके सामंतीय अंदाज से ।
हमें लेना देना ही क्या / रोटियां थापने की मेहनत मुशक्कत से
जबकि शहर के माथे पर जड़ी चट्टानों पर
अपने दांतों को घिस-घिस कर तेज करते जाने की आदत
हमें बनाती हो अनिवार्य हिस्सा / उनकी सभ्यता की शौकीनी का ।
और हमारे द्वारा की गई शेर बनने की रिहर्सल
प्रेरणा देती हो उन्हें / हरदम कविता लिखने की खातिर ।

ऐसे में हम भला रोटियां सेंकने की दिक्कत को
दरिद्र नारायणी पदकों की तरह / क्यों उठाए फिरें ?
और फिर मौज भी तो कितनी है
बिना आज्ञापत्र संसद भवन में
बिना कपड़े पहने मंदिर गुरुद्वारे में
जब चाहे प्रवेश कर जाती हैं हम बिल्ले ।

महाशक्तियों से पाए
अतिशक्तिशाली नकली दांतों का पहन कर सैट
जब चाहे बदल डालती हैं
किसी भी देश के नक्शे को
सचमुच की रोटी जैसी पाचक वस्तुओं में ।

फिर तो क्रांति जैसी महान वस्तुएं भी
हमारी सेवा सुश्रूषा करती हैं
और अंधेरे मे चमकती आंखों को
भविष्य दृष्टि का देकर नाम
वर्तमान को / अपने मजबूत जबड़ों के द्वारा
चिंदी चिंदी कर डालती हैं ।
रेलवे स्टेशन के बाहर फुटपाथ पर
हाथ से कच्चे आटे की गोलियां बांटता
एक मरियल सा खूंखार आदमी
पहली दफा हमें / हमारा हिस्सा देने से इन्कार करता है
और फटी आवाज करने वाली अपनी लाठी से
हमें डराता धमकाता है ।

जैसे पहली दफा बराबर की चोट होती है
और घात लगा कर भी / हमारे हाथ
असफलता ही आती है
और इसकी वजह यह होती है
कि एक जून खाने के अलावा
उसके झोले से कुछ नहीं निकलता है
दुख पर दुख सहते जाने की वजह से
अब उसमें न करुणा बची है / और न परंपरा
जबकि यही तो सुरंगें हैं हमारी
और उसके अभेद्य दुर्ग में
सुरंगें तो सुरंगें
नजर नही आते हैं / भविष्य के रोशनदान तक ।

हैरत मे हैं हम / कि वह सांस कैसे लेता है ?
और देखना है हमें
कि वर्तमान के दरवाजों से ही / भविष्य को गुजरने के लिए
मजबूर कैसे करता है वह ? □

कविता की धूप में खड़ा कर्ण

अंधेरे मे बैठे लोग / भुगतते हैं पावर कट
लैंपों मोमबत्तियों के जमघट के बावजूद
रोशनी खोजते हैं कविता में / कटे हुए कविता से पूरी तरह
खोजते हैं अपना चेहरा
कवियों के चेहरों के इर्द गिर्द / सी जा चुकी बोरियों मे
या अनुभूति के क्षेत्र में / बड़ी-बड़ी पोस्टें पाने वाली बिवाइयों में
उतरती हैं जो / बड़े बड़े जूतों के अंधेरे तलवों में।
मुगलिया जूतियो की नोक के समानांतर
किसकी मूंछों के खम बरकरार है ? / कविता के ?

जिस पश्चिम दिशा मे / गाउन कस कर क्रिकेट खेलते
ब्रह्म की असंगति / भूचाल बन कर फूटी है / उधर से
कुछ कवि सिरो पर गूमड़ लिए चले आ रहे हैं
पूछते हैं पूर्व के लोग / उन्हें देख कर
किस आदि पुरुष के सिर से / लहू की बजाय कविता फूटी थी ?
क्रौंच की क्या बात करते हो / उसका विज्ञापन तो
आंवला केश तेल की बोतल पर छपता है ?
वाल्मीकि ! / वह तो फी महाकाव्य की दर से / ढाई सौ रुपए सालान
पारिश्रमिक पाता है / बेचारा ! कविता के जन्म का गवाह।
कैलेंडर की आखिरी तारीखों को सिद्धांत बना कर।
विस्मयादिबोधक बनने वाली आज की कविता
इतने भेस कैसे बदलती है / कभी नयी, कभी विचारित
कभी समांतर और कभी हथियार कैसे बन जाती है ?

मगर इस से क्या बुरा होता है
शब्दों के अंगारों से भरे अलाव में
तिल-तिल कर आहुत होता अर्थ
देर तक फिर भी चमकता है
अंधी आंखों के बावजूद
सूरज तपिश की तरह महसूस होता है
खुद को अर्घ्य की तरह दे डालने वाला आदमी
कविता की धूप मे
कर्ण की तरह खड़ा मिलता है। ☐

एक विचार कविता

मुझे अपने विचार टॉर्च की तरह लगते हैं
जो अंधेरे में बस बित्ता भर जमीन रोशन करते हैं
जबकि कुछ अदृश्य लोगों के हाथों मे होते हैं / बटन उनके ।
इन विचारों को मैं जैविक गुण सूत्रों मे बदलना चाहता हूं
ताकि मैं उनसे एक भ्रूण की तरह
खुद को दोबारा जन्म लेते हुए देख सकूं
और उनके आस पास की गर्भ झिल्ली की / किलाबंदी को तोड़
उनके शिकंजे से बाहर आ सकूं
पहुंचा सकूं अपने हाथों को / उनके बटनों के मुहानों पर ।

ध्वनियों से खेलते गर्भ शिशु की तरह
चाहता हूं कि जन्म लेता हुआ रोऊं / ध्वनियों में अर्थ भरूं
फिर रोने से करता हुआ पलायन
मैं भी अपनी भाषा में बोलूं ।
भाषा को जानकार समझ / नये के कौतूहल से
कुछ उल्टा सुल्टा पूछूं ।
रंगों की कहानियां सुन कर ही
बिना देखने की कोशिश किए रंगों की
रोशनी पर शोध करने निकल पड़ूं मैं भी ।
यह सब करता हुआ भी मैं लेकिन
सूरज से बिछड़ जाने के गम को / टॉर्च से कैसे गलत करूं ?'
बटनों तक भूले भटके पहुंच जाने वाले अपने हाथों से
बटनों पर अधिकार करने की हालत तक कैसे पहुंचूं ? □.

समाधि के पत्थर

रंगमंच पर उतरी हुई परछाइयां पूछती है
व्यक्ति कहां है ?
जवाब देने के लिए पुनः
कुछ मुखौटे चले आते हैं
पहेली बुझाते हैं / बताओ हम किस के है ?

सवाल जब इतने नुमायां तौर पर बार-बार पूछा जाता है
तो यह तय है कि व्यक्ति जरूर है
छिपा हुआ पर्दों के पीछे
किसी खास वजह से बाहर नही आता है।

शायद सोचता है / जब आ जाएगा समाजवाद
मैं भी प्रकट हो जाऊंगा
क्योंकि जब तक नही आता है समाजवाद
मेरा प्रकट होना खतरे से खाली नही
मेरी अधपकी विचारधारा या अनजीया अनुभव
केवल ढोल ही साबित हो / कुछ ठिकाना नही
मुझे क्या पड़ी ?
असफल होने की नही यह घड़ी
परछाई-परछाई है अगर यह व्यवस्था
मुखौटा-मुखौटा बनी रहे यह जिंदगी
इसी मे सुविधा है।

नही चुक सकती जिंदगी किसी की भी
रंगमंच होकर ही
और न नाटक करते हुए
बनी रह सकती है अनाटकीय।

लुकाछिपी के दर्शन मे डूब कर
फिर पता चलता है एक दिन
कि जो परछाई-सा चला
पहना गया मुखौटे-सा
वह फिर भी कुछ कह गया
छिपा रहा जो / शुरू से अंत तक
समाधि के पत्थर-सा
लाश के सिरहाने ही जड़ा रहा।
हां, यह बिल्कुल अलग है बात
कि नाटक की हर सफलता का सारा ब्यौरा
सूत्र रूप मे
अन्ततः उसी पर / इबारत-सा लिखा गया। □

धूप जले

(1)

धूप भी कहीं ताकतवर होती है
झोंपड़े की छत पर तो रहती है ?

राजा है ताकतवर / कागज पे फसलें उगाता है
दानों की गिनती / पहाड़ों में करवाता है
उसकी ऊंची छलांग का फल
देश की खाद्य समस्या को
सुलझाने के काम आता है
उसकी जनता
सूखे हाड की बांसुरी बजाती है
सुदामा और कृष्ण / एक साथ कहाती है।

राजा ने हुक्म दिया है
कि नगर की शोभा के नाम पर
झोंपड़ों को जलावतन कर दो
आदेशों के नागफांस उछालो
सूरज को धरती पे उतारो।
यह किस ने आदेश की / परवाह नहीं की है
पीली धूप / नगर में
लाल सुर्ख हो क्यों बिखरी है ?

(2)

धूप और खून का रंग एक कैसे हो गया ?
इन्सान के बराबर
यह कोई और कैसे हो गया ?

धूप क्या है
हमारी वेधशाला द्वारा पकड़ा गया एक कीटाणु ?
पराए घर में

नाली के रास्ते घुसने वाला / मन्त्री का जासूस ?
आग या गुस्से के तेवर वाली कविता ?
रोजगार की सिफारिश ?
या ईंटों के भट्ठे के आसपास की / फिजूल की मिट्टी ?

हमारी व्याख्याएं तक कभी-कभी
धूप से ज्यादा वजनदार होती है
हमारे तर्क / धूप का मुंह खट्टा करते हैं
उसे अपने जवाबरहित होने की हालत पर
शर्मसार करते हैं
अस्तित्व से बुद्धि को
श्रेष्ठ साबित करते हैं।
अति प्रश्न है यह
कि खून और धूप की रंगत एक कैसे हैं ?
हमने नया दर्शन बनाया है
जिस में इस सवाल को
अप्रासंगिक करार दे दिया गया है।

(3)

एक अदद आदमी / रोज आठ घंटे काम कर के
एक धूप को खाना खिलाता है
फिर अस्सी करोड़ आदमी
रोज चौबीस घंटे काम ढोते हुए
एक धूप को कब तक खाना खिलाएंगे ?

ओ री पगली धूप ! / दिन मत गिन
यह काम इतिहासकार कर लेंगे
सांस मत गिन
जीवशास्त्री और क्या हिसाब रखेंगे
जीने की फिक्र छोड़
तेरे अलग रंगों मे रंगे खद्दर / वर्ना कैसे जीएंगे ?
मन्दिरों गुरुद्वारों मे तेरे गुन कैसे गाएंगे ?
दफ्तरों सचिवालयों मे
तेरा नाम कैसे / ओढ़े बिछाएंगे ?

(4)

धूप का भाषण सुनने के लिए / चले आए हैं
सेब स्ट्राबेरी और अन्नानास के पेड़ तक
धूप भी क्या कोई बड़ी तोप है ?
चलो, इसी बहाने इस कस्बे की
कुछ तो औकात है।

धूप की आड़ में / यह कैसा अन्धेरा है ?
सूरज ये कैसा है
देखें तो रतौंध होता है !

बचपन से आज तक
धूप में हम भी नहाए हैं
पर आज लोग / किस धूप को मंच पर लाए हैं ?
यह कौन सिर्फ शब्द गुंजाता है
न गर्माता है न छांह का संदेसा लाता है।

(5)

उनके गोदाम में घुस कर
धूपमुंहा हो कर / पीठ अन्धेरा हो गया मैं।
कैसे कहते हैं वे
धूप के घर अन्धेर नहीं होता ?

उन्होंने जब से धूप के
राष्ट्रीयकरण का फैसला किया है
मेरे लिए धूप तक में खड़े होने की जगह नहीं है
और लोग हैं कि
राष्ट्रीयकरण का नारा लगा कर
खड़े हो जाते हैं।
धूप का प्रतिनिधित्व करते-करते
ऐयर कंडीशंड कमरों के / अंधेरों में खो जाते हैं।

हम हैं श्रमिक धूप
एक-दूसरे की तरह मरती हैं

और वे संरक्षक हैं धूप के
सिर्फ अपनी तरह मरना चाहते हैं
लेकिन इससे पहले कि उन्हे मौत आए
वे भगवान हो जाते है
भगवान की मूर्तियां घड़ती है / बेचारी धूप
थक हार कर उनके / आश्रम के फाटक पर मर जाती है।

धूप के संरक्षक सिर्फ अन्धेरे में अन्धेर करते हैं
अन्धेर और धूप का झोंपड़ा
हरिहर ! हरिहर ! कैसा लफड़ा ?

(6)

इतिहास की क्या खबर है ?
धूप की शक्ल का / चिकना एक फर्श है
बड़ी फिसलन है।
कुछ दुर्लभ शिलालेखों से पता चला है
कि हमारे पूर्वजों ने / मिट्टी के घड़ों मे
धूपरंगी स्वर्ण मुद्राएं दबाई थी।
जमीन की खुदाई जारी है
अभी तक कुछ पिंजर निकले हैं / दुर्लभ पशुओं के
कुछ पत्थर / अजायबघरों के लायक
और कुछ पाडुलिपियां / अज्ञात लिपि मे
शायद लोहे से सोना बनाने की विधियां है
शायद पशुओं के खुरों की घिसकिरियां है
शायद सोमरसी मन्त्र शिक्षियां है
अटकलें तो अटकलें हैं
सच यह है कि
सोम अणु और रस एक बम है
खालिस भारतीय बम
क्रिश्चियन और इस्लामी बमो का तोड़
अहिंसक है / हथियार है निरस्त्रीकरण का।
इसलिए अब हमे चाहिए कि हम
युद्धों के विरोध में / चुटकुले बनाएं

इतिहास के तोड़ के लिए
अफवाहों के मनोविज्ञान पर शोध कराएं।
ताकि धूप के फिसलनदार फर्श पर
हमारे बुजुर्गों के घड़े
भरतनाट्यम कर सकें
और कुछ सनातन बाजीगर
दुनियां का मन बहला सकें।

(7)

आओ! धूप की छतरी बनाएं।

हम इंतजार करते हैं
हवा क्या करवट लेगी ?
हवा आमंत्रण समझती है
अंधड़ बन उड़ती है
झाग हो जाते हैं पेड़
और हम गुस्से के तने / तने हुए / तनतनाते हुए
लाखों साल से नम्र बनी रही
अब बस भी कर, अरी घास!
यह जो तेरा झुकना सहना था
वह हवा को दिशा का आदेश दे
बहने की तमीज दें।
धूप की छतरी बन जाए
तो उसके तले चमड़ी
हो जाती है एक वैसी ही दूसरी छतरी।
यह जो छतरी / या यह जो चमड़ी
महसूसने की शक्ल में खुलती
और सोचने की शक्ल में सिकुड़ती / बन्द होती है
अविश्वास या विश्वास
जिस की सलाखें हैं / नाड़ियां हैं
संवेदनाएं जिस में / काले भूरे कपड़े-सी
हब्शियों इंडियनों सी

धूप मे गर्म / क्रोधित हुई रहती हैं —

यह यह चमड़ी अगर
अपने रोंगटों को खड़ा कर ले
अणु दर अणु / एक के ऊपर दूसरे को धर ले
लाखों सुइयों की / एक सुई हो कर चुभे
तो क्या हो !

ओ सुन्दर हवा !
आदमी के सामने तू कुछ नहीं
तू अंधड़ आंधी तूफान भी बने
पर गाढ़े पसीने की मोटी धूप
वहीं की वहीं रहती है
तपाती है / पकाती है ।
उसी धूप की छतरी ले कर
निकल आए हैं हम ।

(8)

चितकबरी गाय रंभाई है
धूप / गेहूं की शक्ल मे उग आई है ।

अरी ओ धूप गाय !
मेहनत कर के / रंग काला पड़ गया तेरा
और उधर / विदेश मे कुछ देर रह क्या गई
जैसे एक भैंस गोरी हो गई ।

तेरे दिन दिहाड़े
गोरी भैंस खेत चर गई ।
एक चितकबरे बच्चे ने
भैंस का दूध पीने की जिद की
तो खेतचरों के कोर्ट ने
बच्चे को नाबालिग करार दिया
और दूध पीने को अशोभनीय काम कहा ।

ए मेरे देश !
तेरे शास्त्र उलझे रह गए

स्तन और थन का भेद बताने में
रह गया / स्तन को भी थन की तरह
दोहने का भेद / अनकहा ।
यह कैसे हुआ / क्या हुआ ?
ऐ मेरी अमृत धूप
तेरे दिन दिहाड़े
गोरी भैंस का बछड़ा / भूखा कैसे रह गया ?

(9)

धूप में छिप जाते हैं कीड़े
और या
हम सब जो कीड़े मकोड़े हैं
धूप से बचने की कोशिश में
कोई बड़ी गलती करते हैं।

क्यों कभी-कभी
हमारे देव और असुर कीड़े
मिल जुल कर / महाविष पैदा करते हैं ?
आकाश बन्धी धूप
क्यों हमे अमृत का धोखा देती है ?
क्यों जिंदा रहते हैं हम
कभी अस्तित्व मे न आने वाले
विषपायी गले की उम्मीद मे ?

पर अब सफल नही होंगे
प्रश्नो के दुष्चक्र मे उलझाने वाले षड्यन्त्र ।
हमारी बीज गलती हमारे ही
सामने आई है
धूप को सहने के लिए
कीड़ों की सेनाएं
मैदान मे निकल आई हैं।
मगर धूप तो मित्र साबित हुई है ।
अब ये सेनाएं अपने जहर को

धूप में पका कर
स्वादु भोजन बनाएंगी
फिर इस विष से बेहतर
और कौन-सा अमृत पाएंगी ?

(10)

धूप ! तेरा छाया से झगडा क्यों नहीं होता ?
आह ! वाणी को मारे बिना
मैं भाषा की छाया से
मुक्त क्यों नहीं होता ?
मैंने तो मित्र दुनियां चाही थी
शत्रु दुनियां के अभाव में
वह कहां थी ?

आ रे मेरे प्यारे दोस्त
तुझे मैं अपने खून से सींचूं
आ रे मेरे कट्टर दुश्मन
तुझे अपनी शिराओं से बान्धूं
तुम दोनों ही घर घुसरे हो
तुम दोनो ही धूपजले हो ।
मुझे तुम दोनों मे अपना ही
अहसास होता है
एक से प्रेम में रचा झगड़ा होता है
तो दूजे से
झगड़ा कर के / प्रेम हो जाता है ।

धूप ! तेरा जो छाया से झगड़ा नहीं होता
इसमें तो बड़ी जटिलता है ।
और जो हमारा
झगड़े के बिना / गुजारा ही नही होता
इसमें बडा अपनापा है !

मगर हम क्या करें
धूपजले तो हो सकते हैं ?
अब हम धूप ही कैसे बनें ? □

न लड़ने की लड़ाई

वज्र की तरह जिन्हें समझा था
मूर्त आस्थाओं-सी प्रतिमाएं / हमारे छोटे सत्यों की
पकड़े गए झूठ की तरह तपाने लगी हमें
और गर्म सलाखाओं-सी उठती हुई ऊपर / रीढ़ में
दागने लगी हमारी मुट्ठियों को
और कुछ पा सकने की हमारी / अदनी-सी हड़बड़ाहटों को ।

टिका कर पांव मजबूत चट्टानों पर
करने निकले थे क्रांतियां
प्राप्तियां जिन पर बरसती हिमपात जैसी
क्या पता था गल जाएंगी वे ही चट्टानें
ज्यों बर्फ की हों मूरतें
पहली धूप के आगोश में ही ।

यह भी क्या अनुमान उसके क्षोभ का ।
हाथ में जिसके कि अगला शिखर हो / बस आया कि आया
और वह ठीक उस पल देखे अचानक
मंजिलों का देवता वह लो चला है / मुंह मोड़ कर मैदान में ।

सत्य बेशक धूल धुंआ हो / अभी तलक
उन हदों तक वह यकीनन था हमारा
गर्व से भी हम भरे थे / याद कर उस साधना को
जो हमारी हड्डियां तक थी गलाती
उन नकारों की मद्धम गति की आंच पर
सम्बन्ध था जिनका / पदमान सुविधा के छलावों से ।
डर था हमे
सुविधा किसी के चरणामृत-सी
जहर बन कर उतर जाए न कहीं
खून से होकर हमारी खोपड़ी या धौंकनी तक ।

लेकिन कहां चाहा था ऐसा
कि हम से कुछ समय पहले / जो हमारे कष्ट के थे भुक्तभोगी

वे ही उठा कर डाल दें फिर से हमें
उन रास्तों के ही मुहानों पर
जहां से खुद उन्होंने शुरुआत की थी अपने सफर की।
और बोलें / आरम्भ से लड़ कर मध्य तक पहुंचोगे जब
तब ठहर कर / खड़े हो कर अलग
तुम भी भेज देना फौज को वापिस मुहानों पर
कहना / अपने स्वयं हो सेनापति
अब लड़ कर दिखाओ !

लेकिन भला क्या इतिहास भी बेताल होता
हजारों वर्ष से ये विक्रमी संवत् हमें जैसे घुमाता
इतिहास को न जीत पाते / उसके जवाब
फिर भी छोड़ कर श्रद्धा का पल्लू
युद्ध को लड़ने से पहले
चाहती खोजना हैं अर्थ फौजें / कुछ पल ठहर कर।

पहली दफा ऐसा हुआ है
आदेश मिलने पर भी कोई / युद्ध से मुनकर हुआ है। □

स्वचालित मंथन

हर नयी संकट की घड़ी हृदय धड़काएगी
सांसों का आना जाना / लगने लगेगा बेमानी
घबराहट में अपनी ही पुतलियों में केन्द्रित हो जाएंगी
फटी-फटी-सी आंखें / एक दफा फिर।

हर दफा की तरह / कलेजा मुंह को आएगा
और मुंह इस स्थिति को
अपनी एक नयी शुरुआत का नाम देकर
छिपने से उबर जाएगा।

वही सवाल एक नया जवाब पाने के लिए
फिर से भृकुटि को भवर में बदल डालेंगे
समुद्र की तरह मथा-मथा-सा लगेगा / एक पूरा समाज।
और हमारा अपना अस्तित्व
पहाड़ होकर भी हिचकोले खाएगा।
बिल्कुल पहचान में नहीं आएंगे
देवता और राक्षस के भेद / पहले ही संशय में डूब जाएंगे।

हर नयी संकट की घड़ी
हमारे संकल्प और विकल्प / दोनों से आजाद होकर आएगी
मिटा डालेगी / जहर और अमृत के बीच का फासला
न हमें सफल होने लायक छोड़ेगी
और न असफल होने में समर्थ। □

शिखरों पर कोहरे की झाईंमाईं

कुछ छिपी अधछिपी मन की धुंआं भूमियों पर टिका कर पैर
खड़े हुए हैं अपने नाम के जो कुबड़े शिखर
छंटते ही धुंआं भूमियों के
हैरत में पड़ कर ढूंढते नजर आते हैं / अपने आधारों को
भड़भड़ा कर गिरने से पहले !

बड़ी नफासत से संभाले हैं / हवाओं में हम ने वे ही शिखर।
चलो ! होंगे ही नहीं / लगे होंगे धुंएं की शरारत की वजह से।
बांधते हुए कोहरे को अपनी मुट्ठियों में / दिलासा दे लेंगे
जब-जब खिसकी हुई धरतियों पर से
टूट बिखर कर आ गिरेंगे झूठे शिखर
और उन पर बैठे रह पाने के हमारे भ्रम।
सह लेंगे धरती की वाजिब ईर्ष्याएं
नीचे आ गिरने की दुखद और दुस्सह प्रक्रियाएं
लेकिन कैसे सह पाएंगे

आकाश में ही गायब हो जाना धरती का
चाहे वह धुंआं ही क्यों न हो ?
अपमान से भी बदतर / आत्मसम्मान तक खो बैठना हमारा
चाहे वह वंचना ही क्यों न हो ?
नहीं, सहने या न सहने की भी कोई बात नहीं अब
जबकि दुराशा पहुंच कर चरम पर अपने
आकाश में धरती की कोख ढूंढती है ।
और शिखरों पर कोहरे की झाईंमाईं को
तितर-बितर करने निकल पड़ी है । □

इतिहास मानव

गुजरते हुए नदी के पुल से
पूछा इतिहास ने मुझ से
क्या यह नहीं हो सकता कि तुम
पीछे की तरफ मोड़ दो / नदी की धारा को ?

तब जब कि मुझे / पुल पर आ रहा था गुस्सा
बंद कर के झगड़ना
अचानक फूल एक / मैंने उसके जिस्म से छुआ दिया ।

फिर देखा इतिहास के अहं को
गोया वही नदी पर बंधा पुल हो
मार दिया ताना
भूल कर ओढ़ी हुई पिछली मानवता
पुल, अरे ! सख्त बजरी से बने
नदी के अंग संग रह कर भी
क्यों नहीं सीख पाए
उछलना कूदना खेलना और बह जाना ?
इस पर इतिहास ने कर दिया इशारा
उस खाली जगह की तरफ

जो उसके और मेरे बीच
तनी हुई थी पुल की ही तरह
अचानक मेरे एक कदम धरते ही उस जगह
गायब हो गया पुल
और नदी उछलती कूदती खेलती
मेरे होश में आने से पहले ही
बहा कर ले गई हम दोनों को। □

विद्रोह से विवेक तक

अब दर्द की तकलीफ और गले नहीं उतरती।
विचारों के कोलाज में लगता है कि
हजारों धागों के उलझने से बनी गांठ की तरह
समस्या जुड़ी ही हुई है अपने हल के साथ
कच्चा माल अपने उत्पादन के साथ।
उत्तर छिपा हो सवाल में / तो क्या फायदा है ?
हमारे होने की वजह फिर क्या है ?
इसलिए चलो / विचारों मे ही सही
मैं कुछ झूठ मूठ समस्याएं पैदा करता हूं
'मान लो' से पैदा हुए / आंकड़ों के लाक्षागृह में कदम धरता हूँ।

अब अनिश्चित है सब कुछ
क्योंकि तुम्हारी टेस्ट ट्यूब में कोई संभावना नही
फिलहाल मेरे पुनर्जन्म के होने की।
इसलिए अब मैं बेखौफ नियम तोड़ता हूँ।

अरे ओ इलेक्ट्रोन ! व्यर्थ की परिक्रमा मे
क्यों अपने आवेश को जाया किया करता है ?
फोड़ दे अणुओं के खोल
सृष्टि को परिचय दे अपनी आग का।
हवाओ ! इतनी सहजता से क्यो चलती हो तुम

कि लोगों को सांस तक लेने का अहसास नहीं हो पाता ?
बहो हवाओ ! / सारी धरती को अपने चक्रवात में समेट कर
उतर जाओ / समुद्र के भंवर में
जलराशि को विवश कर दो / अपनी मर्यादा छोड़ने के लिए ।
ओ लहरीली गति से चलने वाली आवाजो !
अपनी लकीर मत पीटो / अचानक दायरों की शक्ल में घूम कर
गिरो मध्य में / और धम्म से पृथ्वी को कंपाते हुए
हजारों सूर्यों के परिमाण वाली पोल बन कर
लील जाओ इस बूढ़े अंतरिक्ष को ।
वह मेरी बांह कट कर गिरे / जांघ का मांस कवचों में छिपे
कछुए काट खाएं / मांसपेशियों पर पत्थर पड़ें
फिर भी मरूंगा नहीं मैं / और न अमरता के लिए
बचपन की तरह / बीतते वक्त के प्रति अचेतन होने का
बहाना ही घड़ूंगा मैं / मुझे तो महज मनुमार्ग को काटते हुए
किसी पुरोहित का कत्ल करने की जरूरत ही होगी
और नियमों के घुन से खाए / थोदे हुए / इस विश्व में
एक कोहराम मच जाएगा / जिस्मों पे उगे बाल
खड़े हो जाएंगे तीखी सुइयों की तरह / बाहर आ गिरेंगे गर्भाशय
संतानों का जन्म लेना बंद हो जाएगा ।
मुर्दों के टीलों पर खड़ा मैं / खोपड़ियों से फुटबाल खेलूंगा
और मस्ती से सीटियां बजाऊंगा ।
फिर एक लंबे अंतराल के बाद / जब अपने होने का प्रमाण जुटा-जुटा कर
थक जाऊंगा / अकेला होने का नियम तोड़ / किसी एक और की इच्छा करूंगा
और फिर किसी जबरदस्त अपराध बोध के / फणिधर से डस लिया जाऊंगा ।
अब मुझे मुर्दों की आंतों से / एक शक्तिशाली कोड़ा बनाने की जरूरत होगी
जिस से मैं अपने आप को तब तक पीटता रहूंगा
जब तक यह पिटाई गहरे में उतर कर
मेरे अपने उन बंधनों को नहीं तोड़ डालती
जो मुझे नियम तोड़ते वक्त
उन्हें तोड़ने के विवेक से तोड़ डाला करते हैं । □

ख़ुद को उगाते हुए

अब कहीं जा कर
पेड़ के उगने / और रसधार के बहने में
फर्क नजर आया है।

फूल हैं पेड़ का घ्राण :
सूंघने की जरूरत की शुरुआत
फल दिमाग :
मेहनत और कमाई से जुड़ने का परिणाम
कंपित पत्ते वाणी :
मौन का सतत वर्तमान।

होगा यहां तक / मौत का अखण्ड साम्राज्य
क्या फर्क पड़ता है
जब कि यह साफ-साफ देखा जा सकता है
कि काल किस तरह / बनता है पेड़
और उसमें बहती है किस तरह
रसधार बन कर / ख़ुद को जन्म देने की समझ। □

राम रहित मानस

राम! तुम तो थे सूर्यवंशी
और यह हिंदोस्तान
तुम्हारे केन्द्र के इर्द गिर्द घूमती / धरती के
एक महाद्वीप का छोटा-सा हिस्सा।
धरती यानी निर्वात में छिटका एक ग्रह
और हम तुम
घड़ियों में मशीन की तरह चार्ज हुए
वक़्त से कटे / आधुनिक मनुष्य।

हमारी फैक्ट्रियां हमें
किरणों की चादर के भीतर
धुआं-धुंआं करती हुई।
हमारे ठेकों पर चढ़े जंगल
सरकारी पन्नों पर / हमारी मृत्यु के बाद
वानस्पतिक औषधियों के अक्षर लिखते हुए।
हमारी सांस्कृतिक संस्थाएं
जिस्म से लेकर चेतना तक
सीता वनवास से लेकर विचारधारा तक
आमरण अनशन करती हुईं।

और राम ! तुम से पाईं
युगों-युगों में जो सांत्वनाएं
अहसान से दबी हुई अहिल्याएं
उनकी आवाज़ / मशीन की घिर्र-घिर्र में
मौन हो कैसे सुनें ?

अनाज की ज्यादा कीमत के लिए
संघर्ष करते माहौल में
राक्षसों की बजाए / जिमींदारों और अफसरों से
भूमिहीन किसान / लोहा कैसे लें ?

कालिजों से पढ़-पढ़ कर निकले / नौजवान
यूनिवर्सिटियों के ज्ञान को
तरकस में कैसे भरें ? / लव कुश की मानिंद
तुम्हारी सत्ता के यथास्थितिवाद को / कैसे चुनौतें ?

यह बीसवीं सदी है
आज आदमी नहीं
संकल्प-विकल्प / श्रद्धा-अश्रद्धा / प्रेम-आतंक
और इच्छा-भय जैसे जोड़े
उम्र भर जूझने / उतरते हैं मैदानों में ।
परिवार और राजनीति में
निजी और अन्तर्राष्ट्रीय में

एक लगातार फैलाव मिलता है / जोड़ नहीं।
ऊपर से राम! तुम्हारी कथा आज
उपन्यासों, पटकथाओं और अनुवादों का विषय है
बकौल आलोचकों के / तुलसी की प्रतिभा के राकेट
तुम्हारे खानदानी सूर्य की हद से परे
और बड़े सूर्यों की तलाश में निकले हैं
मगर ये सब भी
हमारे व्यंग्य बोध का हिस्सा हैं।

इसलिए राम!
हमें राम रहित मानस के दर्शन कराओ
हमारे संघर्ष को
संदेह और आस्था की जकड़नों से परे
थोड़ा सहज और मानवीय बनाओ।

हमें
हम तक आने के लिए
आजाद छोड़ दो
हे राम! □

महज एडवेंचर के लिए

आपको क्या तकलीफ है / अगर इस वक्त मैं पोनक में हूं।
जानते हो / मेरे शहर की रामलीला की कमेटी
मेरे बारे में बेहिचक यह ऐलान करती है
कि मैं एक ही वक्त / लहरिया पनवाड़ी भी होता हूं -
और सत्यवादी हरिश्चन्द्र भी।
फिलहाल तो नेपथ्य में ही हूं मैं
और फिर यहां एक खुला मैदान भी है एडवेंचर के लिए
तो क्या बुराई है / अगर मैं यह मान लूं
कि मैं महज नाटक करता हूं

और अपने दराजबन्द वक्तव्यों को 'बना देता हूं

सपोलिये अलाद्दीन की खुश-गवार पिटारियां ।

कचौड़ियों की गंध कीट खाकर / मैंने अक्सर महसूस किया है
कि अब गले में फंदे की जगह / टाफी बांध लेनी बेहतर होगी
क्योंकि दुर्घटनाओं की रिहर्सल बार-बार करना भी
एक खतरनाक संभावना ही है ।

बे-हिसाब उत्तेजना के बीच / आज मुझे अपने नाटक का पर्दाफाश करना है
पिछले कुछ दिनों से मेरे रोमकूपों और नाखूनों के बीच
रेंगने लगी है / कोई नामालूम खारिश
और मेरे व्यक्तित्व पर हावी होने लगे हैं
चीड़ के पत्तों नुमा आदिम कपड़े ।

आज मुझे अपना हिसाब चुकता करना है
किरमिची जूतों से / जो बेहद कमजोर हो चुके हैं

गारा रौंदते तलवों की तुलना में

और उन हाथी दांतों से / जिन से खाया खाना

हमेशा मेरे पेट में मरोड़ बन कर उठता रहा है / रह-रह कर !

शायद वे जानते नहीं / कि अभिनय करने से पहले भी
आदमी को तय करना पड़ता है
मीना बाजार से लेकर प्रसूतिगृह तक का सफर
और जिसे खत्म हुआ मान लेते हैं वे

चाय की प्याली के होठों तक पहुंचने के साथ ही ।

मेरा आज का नाटक / ऐतिहासिक निरर्थकता का नाटक है
जिस में हर आदमी कमेटी के रजिस्टरों में दर्ज हो जाने के बाद
खो बैठता है अपनी ऐतिहासिकता को
और छिपाने के लिये इसी बात को
पूरे जोर से पीटता है ढिंढोरा इतिहास का

अपने रसोईघर के बर्तनों को खड़का कर / और खोल कर
काश्मीरी टोपी के नीचे छिपी तीसरी आंख / बताता है
मेरे बाप ने छह औरतों में पैदा किये थे तेरह बच्चे
मेरी किसी में गिनती नहीं / सामंतीय भूल मेरे बाप की
करती है बदनाम मेरी बहनों को / जो रोते हुए चुपचाप
खिलाती है मुझे
सौगंध अपने गोश्त की / बदल डालती हैं मुझे / घरेलू फुसफुसाहटों में ।

ऐसे नाटक मुझे आजकल लिए जा रहे हैं / अभिनय के नये आकाशों में
नचाते हैं नाच / ईडिपस से लेकर मंथरा तक
बनाते हैं भंगिमाएं / कई-कई सदियों के तनाव को
बदल डालते हैं हर नये मौसम के साथ / मेरे कपड़े, चेहरे, पत्ते
उभारते हैं हर रात पतले कागज की पीठ पर / सामने का उजला छापा
दिन भर मेरा अनुत्तरित रहना ।
इसी से घबरा कर / अपने व्यवहार को बदल जाने देता हूं
उस मोमी कागज की चालाकियों में
जो इतिहास के फटे संरन्ध्री पन्नों का छापा उतार लाता है
अपने आप में / बिना इतिहास होने का खतरा उठाए ।

इस नाटक में / जिस्म की स्टेज पर खड़ा हो
बेचता हूं प्रश्नों का कोढ़
लगाता हूं फेरी / धंसी आंखों की अधूरी गलियों में
अपने नाखूनों को दांतों से काटते हैं / मेरे अंगुली पात्र
पेन झटक कर दीवारें लाल पीली करते हैं / मेरे हाथ पात्र
दिमाग को कोल्ड स्टोर में बन्द कर धड़कते हैं / मेरे हृदय पात्र
इतनी दैहिकता दर्शकों को बदल देती है / स्वप्नदर्शी ऋषियों में
और बदले में ये ऋषि दिखाई देते हैं
सुनहरे पैबंद सी पत्नियों का पुनर्निर्माण करते
सतयुगी जनेऊ को बिजली के तीन तार बनाते
अखबारों में अपनी आंखें भूल / साधकों की तरह चित्त लेट शावर लेते
और सभ्य आधुनिकों की तरह / बेडटी में उबलती मार्निंग वॉक की
चुस्कियां लेते ।
ये सभी ऋषि / मेरे नाटक देखने का जुर्माना अदा करते हैं
और अपने हमशक्लों को कभी विदूषक बना डालते हैं / कभी मठाधीश ।
इस तरह मेरे इन नाटकों में / कई पीढ़ियां
व्यर्थता से लेकर आतंक तक का सफर तय करती हैं
और अपने माहौल को बदल डालने से पहले
गतिरोध के बीच / एक नये आदमी के जन्म लेने का इन्तजार करती हैं ।
इस तरह दर्शकों के मनोरंजन का इन्तजाम करता नाटककार
अनुत्तरित खड़ा दिखाई देता है
जिस पर करुणा से भर कर सहमे दर्शक
उसे कभी खूंटियों पर टांग लेते हैं / कभी कन्धों पर उठा कर भी
आभारी होते हैं
क्योंकि इस से तृप्ति होती है / उनके एडवेंचर के भाव की । □

खातों में जमा भविष्य

उन युवकों के पास थे असन्तुष्ट शब्द ।
अपने आपको सुनाने की गरज से
वे जोर से चिल्लाए
हमें नेतृत्व दो / शस्त्र दो / शब्द दो ।

इसके बाद वे भविष्य की बजाए
वर्तमान में ब्याज देने वाले
बैंक की खोज में निकले ।
मंच के लाऊड स्पीकर को
बंदूक समझ / छीन लाए
और फिर अपने भविष्य को
बैंक में पास बुक में जमा करवा कर
खुश-खुश वापिस लौट आए ।
कुछ इस तरह / मां-बाप ने
अपने लाड़ले बच्चों को / पास बुक बनते हुए देखा ।
उधर अपनी पार्टी की ताकत के सहारे
बैंक के लॉकर से
बटोर कर ले गये नेता / कुछ थोड़े से शब्द
नोट शब्द / सिक्के शब्द / मत शब्द ।

भविष्य को अपने ही खातों में जमा समझ कर
परीक्षाओं में / फेल होती रही पास बुकें
नौकरियों की भीड़भाड़ से
बचबचा कर लौटती रही पास बुकें
लगातार बिना वसूली के
लौट कर आते रहे / उनके चैक ।
हिंदोस्तान के खजाची की मर्जी
बेचारी पास बुकें आखिर करें तो क्या करें ?

शब्द उन्हें अन्धेरे में ले गये
शस्त्र गुमराह कर गए

राह चलते नेताओं ने
झटक कर छुड़ा लीं / अपनी मोटी उंगलिया
उनकी नन्हीं-नन्ही मुट्ठियों से ।
पास बुकों की स्याही फैलती रही
उनके गज-गज आसुओं से ।

अब वे लगातार खोज रहे हैं / बड़ी-बड़ी किताबें ।
सात किताब से ऊब जाते हैं
तो ग्रंथ को सिर पर उठा लेते हैं ।
सर्वोदयी उपवास के दिन लद जाने पर
आत्मघात को बलिदान का नाम देते हैं ।
पर नाम तो नाम हैं / महज शब्द
पासबुकों से छिटक बया गए
उल्टे और पवित्र हो गए !
वे अब बड़ी शिद्दत और गरिमा के साथ
हर रोज दोहराते हैं अपनी प्रार्थना
चीखते और चिल्लाते हुए—
वे शब्द / जिनकी पवित्रता
शस्त्र से खंडित नहीं होती
जिन की खुदाई
ऐरे गैरे नेताओं की वजह से भी
आदमीयत में स्खलित नही होती
वही कठोर भावहीन क्रूर शब्द
हमे मन्त्र की तरह मिलें
शस्त्र की तरह तोड़ें
नेता की तरह मारें ।
हम तैयार हैं
भाषा का सम्मोहन हम पर / आज भी सवार है । □

8 जनवरी, 1985 की ठंडी रात में धर्म निरपेक्षता

अभी-अभी खिंच गई है एक स्याह लकीर अंधेरे की / आकाश में ।
आठ जनवरी उन्नीस सो पचासी का सूरज
ढल गया है सरकार का हुक्म मान कर / बंद हो गया है यातायात
लेकिन कामकाज कहां रुकता है ?

न सही बसें / आते जाते हुए ट्रक
बोरियों के ऊपर तिरपाल की तरह / बिछाने की फिराक में है
जिंदा यात्रियों की पांतें / खोसें निपोर कर
ड्राइवर ट्रकों के / भरते हुए बसों के किराए अपनी खीसों में
धकेल कर चला रहे हैं / जाम हुए धंधे लोगों के।

और उस वक्त जब एक घना अंधेरा
लगातार होता हुआ गाढ़ा / हिलने डुलने लगा हो
क्रमशः सड़क और फिर ट्रक की शक्ल में
तीखी जीरो डिग्री से नीचे की ठंड
दांतों से उतर कर झुरझुराती देहों में
करने लगी हो अवैध यात्राएं
ट्रक के खुले पिछवाड़े के यात्रियों में
जगता है अध्यात्म / तब।
विरल हो जाता है आतंक / संभावना अपनी हत्या की
स्मृतियों से होने लगती है अनुपस्थित।
ठंड को मिलता है एक मौका चुराया हुआ
ट्रक के खुले पिछवाड़े में खुल कर
गला रेतती हैं तीखी बर्फानी कटारें
नहीं, ये छह इंच की भी नहीं
और इन्हें ले जाने की कहीं मनाही भी नहीं
फिर भी इस कदर तीखी है इनकी चुभन
कि इनसे बचने की कोशिश / एक तरह के
समाजवाद को जन्म देती है
ठंड की वजह से एक पूरी व्यवस्था बदल जाती है।
एक दूसरे में इस तरह घुसे जाते हैं हम सभी
कि पता ही नहीं चलता
कि मेरी बांह है यह या टांग है उसकी
छाती है उसकी या मेरी नर्म हुई कुहनी
उसके शाल की गर्मी है यह / या उस पर ओढ़ाए गए मेरे कोट की
उधर फर्श पे बिछा है मेरा जिस्म / या मेरी टांगों में
छिपी हैं इधर / किसी और की मांसपेशियां गुदाज।

अजब माहौल यह धर्मनिरपेक्षता का है।

ट्रक के इस बंद फर्श पर
कुछ समझ नहीं आता
यह किसका खुला घर उठा है ?
देह को समर्पित करके ठंड को
यह कौन आतंक से ऊपर उठा है ?
सोया है धर्म के अंधेरे फर्श पर
या प्रजातंत्र के ठंडे शोर में जगा है ? □

आदिम भूल

हाकिम ने आग से कहा
रियाया को सुलाए रखने की तरकीब बता
आसान-सी एक तरकीब आग ने सुझाई
सोए हुओं के घरों में जाकर आग
कूड़ा कर्कट जला आई।

उस दिन के बाद से / रियाया में नींद
धर्म की तरह फैलने लगी।

धीरे-धीरे हाकिम के इशारों पर
कूड़ा कर्कट के साथ-साथ / जलने लगे लोगों के घर
किस्मत या देवता का नाम लेकर
बैठ गए लोग मन मसोस कर।

हाकिम ने भी धर्म की लगाम पकड़ ली
सोए हुओं को सुलाए रखने के लिए / उद्घोष हुआ—
सभी कोशिश कर के देखें जागने का सपना
रिहर्सल करें / शायद एक दिन नींद टूट ही जाए।

लेकिन अफसोस ! सचमुच ही जग गए कुछ लोग
भयानक आग की जीभ से / लार की तरह टपक निकले
और अपने पसीने को बना कर अपना हथियार
निकल लिए / आग को ही बुझाने की खातिर।

लेकिन लगी हुई आग कैसे बुझे ?
यह आग आज / घर को ही कूड़ा कर्कट समझ लेने की
आदिम भूल का / हाकिम से हिसाब मांगती है।
अब न मिले जवाब / तो यह क्या करे / कैसे बुझे ? □

कालिय मर्दन

कभी-कभी क्यों सूझती है
जमीन की मिल्कियत से ऊपर उठे आकाश को
धरती पर उगे पेड़ों के सिरों पर
टप्-टप् बरसने की बात ?

मिल्कियत से ऊपर उठे प्रेम के लम्हों में
बिखर जाती है फूल पत्तियां / अस्पष्ट शब्दों सी
भाईचारे की पीड़ा से / नीले पड़ जाते हैं बादल
कांपते हैं मिट्टी के प्यासे पपड़ाए होंठ
जूझने की उकसाहट से भरे / इस प्रेम के बुलावे पर
उठ कर खड़े हो जाते हैं / समूहों के समूह
इन्द्र की टक्कर के ग्वाले
सब की पुतलियों में / सांवरी चेतना वाले कृष्ण
पलकों के पीले वस्त्र पहने / करते हैं नृत्य
राधा के मन भंवर से लेकर / कालिय मर्दन तक
यमुना किनारे की घास जैसे बालों को छू कर
उन नये नवेले ग्वालों की पलकों के
बह निकलती है जन रक्षा की एक नदी।
मिल्कियत से ऊपर उठे प्रेम के जन्मदिन पर
गोया पल भर में / भोग ली जाती है—एक सदी। □

रास लीला

धुंध की तरह मुड़ी
धूप के कोट-सी गुनगुनी
बेलों पर / फूलों के टांगती हुई
मिनी स्कर्ट से कुछ

झलकती है जो आसपास
क्या तुम्हारी ही उपस्थिति है ?
मुझे साधक बनाती है—
सिमट कर / टांग पर टांग रख / खड़ा होता हूं
पेड़ की सी मुद्राएं बनाता हूं
लेकिन मेरे पत्ते-पत्ते को छूते हुए तुम
धुंध बन कर / समेट लोगे / पूरे शहर को
अपनी बाहों मे
यह मैंने कब चाहा था ?

शायद यह तुम नही हो
तुम्हें छूने की बेहिसाब आकांक्षा मेरी
साकार होती हुई धुंध में
फैल गई है—इस पूरे शहर मे ।

तुम्हारी अनुपस्थिति मे
तुम्हारे स्पर्श का / रचाने लगी है स्वांग
झूठ मूठ का एक सचमुच रास । □

कुछ चित्र कविताएं

(1) सूरज
भट्ठी में तपता हुआ
तांबे और पीतल की मिश्र धातु का एक थाल ।
(2) चांद
कहीं-कही से काले धब्बो वाली एक तश्तरी
कलई करवाने के बाद
ट्यूब लाइट में रख दी गई ।
(4) अन्तर्राज्यीय चौराहे
गांव के सीमांत पर
झोपड़ियां परदेसी मजदूरों की :
अन्धेरे में घुटी
इच्छाएं सुनहरे भविष्य की ।
(5) झाड़ झंखाड़
थामने आकाश को
उठे ऊपर को / झाड़ तार-तार

ज्यों थामने धर्म को
निकल पड़ी राजनीति
जत्थम,जत्था / धुंआ धुंआ । ।

(6) आत्मा मेरे शहर की

शहर के बीचों बीच बीहड़
बीहड़ के बीचों बीच घर ।
आतंक का राज्य है.
गर्मी की रुत में
कैसा जाड़ा उतर आया है । □

पेड़ से झरता हुआ पीला पत्ता

लचकदार वस्तु / कठोर काठ छोड़ गई
एक बिल बहस बाद / कानून में बदल गया ।
हर रोमकूप—एक ओंठ
सोने के पानी का / लेप कराने की इच्छा को पीकर
सूख गया / पड़ गया वो पीला / सोने जैसा
इच्छा पूरी करने की कैसी ये तरकीब निकाली ।
युग बदला साथ-साथ / बदल गया मूल्य परोपकार का
फल की खातिर मीठा रस / बना-बना कर उकताया
वक्त से पहले हो गया रिटायर / कितनी देर और जीएगा
क्या भरोसा !
पुरानी चीजें पुरानी तो होती हैं / अपनी भी कितनी लगती हैं
नोकदार मुगलिया जूतों की तरह
ऊपर को मरोड़कर पतली की गई मूछें
आज कुछ और भी अकड़ी हैं
बुढापे में आत्मसम्मान की तख्ती उठाए हैं ।
उड़ती हुई धूल धीरे-धीरे / सब ओर जमती जाती है
हड़ताल पर है धरती की धूल / उसके प्रतिनिधि
पत्ते की चटाई पर / जमकर बैठे देते हैं धरना कोई ।
कवि भी क्या करे
पेड के आतरिक मसले मे हस्तक्षेप कैसे करे ?
हां, चरमरा कर टूट जाएं / सूख कर पीले पत्ते
तो उन्हे नाम देकर क्राति का / हो सके तो छुट्टी पाए । □

विनोद शाही —जन्म : चरखी दादरी (हरियाणा), 1 जनवरी, 1955 .शिक्षा : पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला तथा गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर से एम ए हिन्दी एवं अंग्रेजी तथा पी-एच. डी. ; आबकारी एवं कर निरीक्षक, डी. ए. वी. कॉलेज, जालन्धर मे प्राध्यापक और अब राजकीय महाविद्यालय होशियारपुर के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में प्राध्यापन ।

साहित्यिक सरगर्मियां :

कविता : 'शिविर' व 'अणु से ईथर तक' का संपादन व इन में कवि रूप में संकलित । दो सौ से अधिक कविताएं पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित तथा दूरदर्शन व रेडियो से प्रसारित । कहानी संग्रह : श्रवणकुमार की खोपड़ी । नाटक : मूठपुराण (प्रकाशित, मंचित एवं दूरदर्शन से प्रसारित) ; आओ, भगवान बनाएं जुआखाना, लीलाघर, मायानगरी तथा सभी लड़ाई जो करें (प्रकाश्य) उपन्यास : युयुत्सु के बाद (प्रकाश्य) ; शोध : हिन्दी काव्य-नाटकों में परम्परा व आधुनिकता ; संपादन : सौरभ (लघुपत्रिका) तथा रंगकर्म ।